नया हिन्दी साहित्य : एक भूमिका

: लेखक :

प्रकाशचन्द्र गुप्त

स्वर्गीया रामेश्वरी गोयल

को

आवेदन

यह पुस्तक सन् १६३६ के लगभग लिखे निबन्धों का संग्रह है। इस बीच में लेखक का प्रगतिवादी दृष्टिकोण विकसित हुआ है, और साहित्य की गति में भी अनेक परिवर्त्तन हुए हैं। फिर भी इन निबन्धो में हिन्दी के पाठकों को कुछ काम की बातें मिल सकती हैं। इसीलिए पुस्तक का नया संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुस्तक में केवल साहित्यिक प्रवृत्तियों का ही दिग्दर्शन है। संपूर्णता का दावा पुस्तक नहीं करती। अनेक कवि और लेखक जिनका आलोचक आदर करता है, इन निबन्धों में छूट गये हैं।

प्रयाग, प्रकाशचन्द्र गुप्त।
१ जून १६५३।

लेख-सूची

पृष्ठ

१. हिन्दी साहित्य की प्रगति १
२. कविता २१
३. उपन्यास ४१
४. कहानी ... ५२
५. आलोचना ५८
६. रंग-मंच ... ७०
७. प्रेमचन्द की उपन्यास-कला ... ७५
८. 'प्रसाद' की नाट्य-कला ... ८८
९. एकांकी नाटक ... ९५
१०. प्रेमचन्द : कहानीकार ... १०१
११. कामायनी ११३
१२. अनामिका ... १२४
१३. पन्त की प्रगति १२९
१४. महादेवी वर्मा १४२
१५. गोदान १५२
१६. जैनेन्द्र : उपन्यासकार १६१
१७. भगवती चरण वर्मा : उपन्यासकार ... १६८

१८. 'बच्चन' १७३
१९. नरेन्द्र १८१
२०. 'दिनकर' १९०
२१. 'अज्ञेय' : और 'शेखर' १९६
२२. शान्तिप्रिय द्विवेदी २०२
२३. साहित्य और सुरुचि २०६
२४. साहित्य और संस्कृति २११

हिन्दी-साहित्य की प्रगति

१

मनुष्य निरन्तर अपने वातावरण से युद्ध करता है और प्रकृति की विराट् शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करके अपने में नया बल अनुभव करता है। इस संघर्ष में उत्पन्न हुई अनुभूतियों को वह कला से सजाता है। इस प्रकार काव्य, संगीत, चित्रकला आदि का जन्म होता है। भारत के कृषि-प्रधान आर्य समाज ने अपने अनुभव को वेदों की ऋचाओं में सजाया; दूर अमरीका के 'रेड इंडियन्स' ने आखेट जीवन के चित्र अपनी गुफाओं की दीवारों पर बनाये; किन्तु इस कला-प्रयास के पीछे मूल प्रेरणा एक ही थी; स्थूल-जीवन से संघर्ष का अनुभूतिरंजित वर्णन।

आगे चलकर संस्कृति के विकास के साथ संघर्ष की भावना अदृष्ट होती दीखती है, किन्तु मूल स्रोत में अवश्य रहती है। इस प्रकार कला मनुष्य के भौतिक जीवन का प्रतिबिम्ब है और संघर्ष के क्षणों को हल्का करने का प्रयास भी।

संस्कृति का इतिहास आदिम काल के सामूहिक जीवन से आरम्भ होता है। मनुष्य ने सभ्यता का पहला पाठ सबके साथ मिल-बाँटकर खाना सीखा। कृषि-समाज के साथ भूमि व्यक्ति की सम्पत्ति बनी और समाज दो भागों में बँट गया; एक वर्ग के हाथ में सत्ता थी, दूसरा शासित था। शताब्दियों से कला शासक वर्गों की भावनाओं का प्रतिबिम्ब रही है, क्योंकि शासित वर्ग के पास अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के कोई विशेष साधन न थे। शासित वर्ग की भावनाएँ लोक-गीतों में और लोक-कला के अन्य रूपों में प्रसार पाती रहीं। लेकिन यह कला दबी-दबी जीवन-यापन करती रही।

शासक वर्ग की कला को हम एक ऐतिहासिक क्रम में देख सकते हैं, यद्यपि सब देशों में एक साथ यह क्रम नहीं मिलता। संगठित समाज से पहले भी कला के चिह्न हमें मनुष्य के इतिहास में मिलते हैं। आखेट-जीवन में भी कला के अणु थे। भारत के भील अथवा अफ्रीका के बौने अपने धनुष-बाण, भाले और कटार कला से सजाते हैं। कुछ बर्बर जातियाँ अपने शरीर को लाल-नीले रंगों से रँगती थीं, जिससे शत्रु भयभीत हो जायँ। गोचर समाज में कविता का अनन्य विकास हुआ, इसका उदाहरण आर्य और यहूदी जातियों का प्राचीन साहित्य है।

कृषि-प्रधान समाज में कला चरमोन्नति पर पहुँची, इसका साक्षी मिस्र, बैबिलन, ऐसीरिया, यूनान, रोम, भारत और चीन का इतिहास है। शासक-वर्ग की संस्कृति का यह उपःकाल था और उसमें गति और शक्ति थी। इस संस्कृति के सर्वेसर्वा समाज के पुरोहित और पंडित थे, क्योंकि उन्हीं के मंत्रों के बल से वर्षा होती थी।

कृषि-प्रधान समाज कालान्तर में सामन्ती समाज में परिणत हुआ, जब उत्पादक शक्तियों का प्रबन्ध सामन्तों के हाथ में आया। सामन्ती वर्ग भूमि का स्वामी था और भू-दासों के श्रम पर उनका जीवन अवलंबित था। सामन्ती-समाज के अनुरूप उनकी कला का भी विकास हुआ, जिसमें अनन्त अवकाश-प्राप्त व्यक्तियों के विलास और क्रीड़ा का चित्रण था : "गलीचा, गुनीजन, तान-तुक-ताला, मसाला, चित्रशाला" आदि। ह्रासोन्मुखी सामन्ती समाज की कला शृंगार में इतनी विभोर हुई कि उनकी साधना भी इसी रंग में रँग गई। राधा और कृष्ण उनकी कला के नायक-नायिका बन गये। इस कला की मधुरिमा स्वास्थ्यकर किसी प्रकार भी न थी।

सामन्ती संस्कृति की एक विशेष अभिव्यक्ति भारतीय संगीत है। अनन्त अवकाश-प्राप्त समाज में ही इसकी साधना सफल हो सकती है। कमल के फूल की पंखुड़ियों अथवा आइन्सटाइन के किसी 'फ़ॉर्म्यूला' के

समान भारतीय राग की आत्मा खुलती है, और ध्वनियों के दुहराने में घण्टों के संयम की आवश्यकता है। मध्य युग के उन मनोहर नक़्शों को हमारे संगीतकार आज भी दुहरा रहे हैं, और भारतीय संगीत एक बहुत ही संकुचित वर्ग की पूँजी बन गया है जिसका उपभोग पूरा शासक वर्ग भी नहीं कर सकता। समाज की रूप-रेखा में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हो चुके हैं; अब न वह समाज है, न वह अवकाश कीर्त्तन, क़व्वाली अथवा आल्हा के समान बोधगम्य संगीत हमें भविष्य में विकसित करना होगा, यद्यपि उसकी प्रेरणा पुजारी अथवा सामरिक जीवन से न होकर सर्वसाधारण के जीवन से होगी। इस संगीत में क्लासिकल परम्परा के सर्वश्रेष्ठ तत्त्व भी हम शामिल कर लेंगे।

मध्य युग के शासित-वर्गों में भी सदियों के उत्पीड़न से कविता का जन्म हुआ, जो भौतिक जीवन को भुलाकर अदृश्य में लीन होने की कामना लेकर आई। निम्न शासित वर्गों की भौतिक जीवन के प्रति यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। इस जीवन में आशा के कोई चिह्न न देख ब्रह्मरन्ध्र में उन्होंने अपने प्राण खींच लिये और कहने लगे, यह जग सब माया का खेल है:—

साधो एक रूप सब माँही
अपने मन बिचारि के देखो और दूसरा नाहीं। (कबीर)

अथवा

'जो नर दुख में दुख नहिं मानै।
सुख सनेह और भय नहिं जाके, कंचन माटी जानै।....' (नानक)

इस प्रकार उनके पीड़ित हृदय को अध्यात्म का "मधु-मरहम" मिला। किन्तु यह कवि विद्रोही कवि भी थे और उन्हें प्रचलित समाज-व्यवस्था किसी प्रकार भी स्वीकार न थी।

क्रमशः सामन्ती समाज का ह्रास हुआ और उसका स्थान एक नवीन उत्पादन-पद्धति ने ग्रहण किया। पुराने शासक धूल में मिल गये और

एक नवीन वर्ग ने सिर उठाया। इस वर्ग ने उत्पादन-शक्तियों का अपूर्व विकास किया और वर्ग-संस्कृति को अनेक क़दम आगे बढ़ाया। किन्तु यह व्यवसायी संस्कृति 'अर्थ' को उसी प्रकार अपना सर्वस्व मानती है, जैसे सामन्ती संस्कृति 'काम' को। अपने उषःकाल में इस संस्कृति ने कविता, उपन्यास और अन्य कलाओं को ख़ूब विकसित किया, किन्तु आज जब उसके प्राण संकट में हैं, उसने कला से वैराग्य लिया है। इस वर्ग-संस्कृति के शासन में कविता संसार से विलीन हो रही है, रंगमंच सूने पड़े हैं और कलाकार अंदर ही अंदर घुटकर टोलर के समान आत्महत्या कर लेते हैं।

कविता से पूँजीपति कुछ अधिक न कमा सके। नाटक के स्थान पर उन्होंने सिनेमा और सङ्गीत-प्रहसन चालू कर करोड़ों बनाये। इस कला में जीवन का बहुत नीचा मूल्यांकन है। धन-उपार्जन का सर्वोत्तम साधन उन्हें उपन्यास मिला। इस युग में शिक्षा और छापे का काफ़ी प्रसार हुआ और इसके फलस्वरूप कहानी लोक-प्रिय बनी। इस कहानी का मूल आधार शासक वर्ग की मनोरञ्जन-वृत्ति और रस-प्रेरणा थी, अतः उपन्यासकार अपने वर्ग-जीवन का शाश्वत-त्रिकोण—यानी अ ने ब से प्रेम किया; ब ने स से; स ने अ से—अपनी कृति में बार-बार दुहराने लगा। इस कारण कुछ काल के बाद साहित्य के इस नये अंग में भी कुछ बल न रह गया और वह निर्जीव, मृतप्राय होने लगा।

संसार में पूँजीवादी संस्कृति आज क्षयग्रस्त है। शासक-दल दो टुकड़ियों में बँटकर बार-बार प्राणघातक समर में लीन हुआ है। जगत् के अधिकांश साहित्यकार अपने वर्ग-बंधन से असहाय इस ताण्डव नर्त्तन को देख रहे हैं और कुछ कर नहीं पाते। किन्तु फिर भी कुछ महान विचारक जैसे रोम्या रोलाँ, आइन्सटाइन, शॉ, वेल्स, टैगोर इस दलदल से संस्कृति का शकट निकालने में प्राणपण से लीन रहे हैं।

शासक-दल अब साहित्य और कला का बहिष्कार करने लग गया

है। वह कविता की अपेक्षा बम से अधिक रुपया कमा सकता है। उसके ध्वंसात्मक खेल से कलाकार ग्लानि भी करने लगे हैं। कला वर्ग-स्वार्थों का पूरी तरह सङ्कट काल में साथ नहीं दे रही। अतः पश्चिम में रही-सही विचार-स्वतन्त्रता भी नष्ट हो रही है। जर्मनी में गाड़ियाँ भर-भर किताबें जला दी गईं, फ्रान्स के बन्दी-गृह वाम-पार्श्व के कलाकारों से पटे पड़े थे। हमारे देश में स्वतन्त्र विचारों की पुस्तकें आसानी से घुसनें नहीं पातीं।

आज पूँजीवादी संस्कृति संक्रान्ति काल में है। उसके त्राण की भी कोई आशा नहीं। इस संस्कृति के भग्नावशेषों को हटाकर हम एक नवीन विराट् संस्कृति की नींव रक्खेंगे, जो विशेष वर्ग की पूँजी न होकर एक वर्ग-हीन समाज की जीवन-प्राण होगी। वायु और जल के समान वह भविष्य में जन-जन के लिए सुलभ होगी। 'अर्थ' और 'काम' की साधना अथवा शृंखला न होकर वह मनुष्य के आगे बढ़ने का पथ प्रशस्त करेगी।

मनुष्य का जीवन गतिशील है। संकुचित विचारों की परिधि में फँसे कुछ कलाकार यद्यपि गति-रुद्ध हैं, जीवन की शक्तियाँ हमें आगे बढ़ाती ही रहती हैं। इन शक्तियों की गति में कुछ क्षणों के लिए हम अवरोध डाल सकते हैं, किन्तु सदैव के लिए उन्हें रोक नहीं सकते। हमें निश्चय करना है, क्या साहित्य समाज की प्रगति में सहायक बनेगा, अथवा तटस्थ रहने के भ्रम में प्रतिगामी शक्तियों की मदद करेगा।

सर्वहारा की सेना आगे बढ़ रही है। उसकी विजय निश्चित है। विश्व की नवीन-समाज-व्यवस्था शोषण और शोषक दल का सदा के लिए अन्त कर देगी। नवीन संस्कृति इतिहास में पहली बार पूर्ण रूप से जन-सत्तात्मक होगी। तब आदिम-युग का अन्त होगा और सच्ची सभ्यता का आरंभ। उस सभ्यता की कल्पना करना भी हमारे लिए कठिन है।

इस आनेवाले युग में पृथ्वी, जल, वायु पर मनुष्य-मात्र का अधिकार होगा। रंग-मंच, सिनेमा-गृह, चित्रशालाएँ, रेडियो और उत्कृष्ट संगीत की ध्वनि से मुखरित पार्क सर्वसाधारण के लिए खुले होंगे; आवश्यकता के

अनुसार साहित्य और कला की सामग्री सभी को उपलब्ध होगी। तब पहली बार मनुष्य स्वतन्त्र और सुसंस्कृत होगा। प्रगति का अगला क़दम मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाना होगा। तब समाज में न चोर होंगे, न पागल।

इस महान यज्ञ में साहित्यिकों का सहयोग युग-धर्म माँग रहा है। यही प्रगति का पथ है। समाज का संकट देखते हुए कलाकार के लिए और कोई रास्ता नहीं रह गया है।

२

आधुनिक युग हमारे देश में एक नया जीवन और उत्साह लाया है। इस पुनर्जन्म का संदेश साहित्य की रग-रग और कोपलों तक में पहुँच चुका है। अब हम किस दिशा की ओर बढ़ें, यह प्रश्न हमारे सामने उठता है।

साहित्य जीवन से बँधा है। जब वह जीवन से अलग हो जाता है, तभी उसका पतन शुरू होता है। हिन्दी की अखंड काव्य-धारा जीवन के स्रोत से ही फूटकर निकली थी। तुलसी, सूर, मीरा अथवा कबीर की पदावली देश के प्रतिनिधि-भावों से प्रेरित हुई थी, जैसे देश का मूक जीवन अनायास ही मुखरित हो उठा हो। यही कारण है कि तुलसी और सूर हिन्दी-साहित्य के अमर कलाकार हैं।

रीतिकाल की कविता हल्की उतरती है, क्योंकि उसकी प्रेरणा भारतीय जन-समाज की आशा, आकांक्षाएँ न थीं; वह केवल उच्च-वर्ग की विलास-सामग्री बन गई थी।

आज यद्यपि हमारे साहित्य का काया-कल्प हुआ है और जीवन-भार से हिन्दी-साहित्य आकुल है, यह आशंका हमारे मन में उठती है कि हमारा साहित्य पुरातन के खँडहरों पर अश्रुपात करता ही न रह जाय!

पुराने युग का अन्त और नये का जन्म—हम देख रहे हैं। भारत में

ही नहीं, सारे संसार में। प्रत्येक जन्म के साथ पीड़ा रहती है। इस विलीन होती हुई प्राचीन संस्कृति का जितना अच्छा 'Swan Song' गाल्ज़वर्दी ने गाया, शायद किसी और कलाकार ने नहीं। वही मर्सिया आज हम हिन्दी के काव्य में भी सुनते हैं। अपने साहित्य की इस अन्तर्वेदना को समझने के बाद नई आशा, अभिलाषाएँ, देश के जीवन में होती हुई क्रान्ति और भावों के संघर्ष हम कला में प्रतिबिम्बित देखना चाहते हैं।

हमारे कवियों ने अक्सर जीवन से मुख मोड़ कर 'अनन्त' को अपना राग सुनाया है। हमारे कहानीकार केवल मध्य-श्रेणी के जीवन-चित्र खींचने में लगे हैं। प्रेमचन्द ने अवश्य ही फ़ैक्टरी और बाजार-हाटों में जो नई पुकार उठी है, उसे सुना था और उनकी कला में हमें इसकी प्रतिध्वनि मिलती है। हिन्दी के एकांकी नाटककार 'प्रसाद' अतीत के सुनहले सपने देखने में तल्लीन जीवन के दुःसह दुःस्वप्न न देख सके। इस ओर उन्होंने अपना ध्यान 'कंकाल' और 'तितली' में दिया।

पन्त के 'परिवर्त्तन' में देश का क्रन्दन व्यापक नाद कर उठा है। कवि के हृदय की अन्तर्वेदना यहाँ विवश हाहाकार कर उठी है।

'आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस

वही मधुऋतु की गुञ्जित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिञ्चनता में निज तत्काल
सिहर उठती,--जीवन है भार!

आज पावस-नद के उद्‌गार
काल के बनते चिह्न कराल;
प्रात का सोने का संसार
जला देती संध्या की ज्वाल!

अखिल यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल;
कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, काँस, सिवार;
गूँजते हैं सबके दिन चार,
सभी फिर हाहाकार !!'

'रूपाभ' के जन्म-काल से पन्तजी के काव्य का भी पुनर्जन्म हुआ, और आपके 'छन्द के बन्ध' खुल गये। 'ग्राम्या' अभी तक पन्त की सर्व-सबल कृति है।

'निराला' के काव्य में एक नया ही गति-प्रवाह और संगीत है। जब वे स्वयं अपनी कविता पढ़ते हैं तो उनके स्वर की गम्भीरता और सङ्गीत-ज्ञान के कारण मन पर काफ़ी प्रभाव पड़ता है। काव्य-परम्परा से उनका घोर विरोध है, विशेषतः टेकनीक के मामले में। आपने मुक्त छन्दों में कविता की है और कभी-कभी आपकी पंक्तियों का भग्न सङ्गीत हमको ब्राउनिङ्ग का स्मरण दिला देता है, जैसे पन्त के लम्बे बाल और उनका मधुर व्यक्तित्व शैली का। 'निराला' के काव्य में नवयुग की प्रतिध्वनि हमें स्पष्ट मिलती है :

'हमारा डूब रहा दिनमान !
मास-मास दिन-दिन प्रतिपल
उगल रहे हों गरल-अनल,
जलता यह जीवन असफल;
हिम-हत-पातों-सा असमय ही
झुलसा हुआ शुष्क निश्चल !
निकल डालियों से
झरने पर ही हैं पल्लव-प्राण !
हमारा डूब रहा दिनमान !'

भिक्षुक के प्रति आप कहते हैं :

'वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।'

निराला हिन्दी के क्रान्तिकारी कवि हैं और नये युग के निर्माण में उनका हाथ काफ़ी रहा है। आपके सुन्दर गीत पढ़कर हम यह भी सोचते हैं कि शायद किसी और युग तथा काल में केवल मधुर गीत बनाने में आप तल्लीन रहते। अनायास ही फूल के समान आपका स्वर खिल उठता है :

'प्रिय, मुद्रित दृग खोलो !
गत स्वप्न-निशा का तिमिर जाल
नव किरणों से धो लो—
मुद्रित दृग खोलो !'

इधर 'निराला'जी ने 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' में एक नये संगीत और दलितों के प्रति सदय भाव की अभिव्यक्ति की है।

श्री महादेवी वर्मा का काव्य आँसुओं से भीगा है। कौन जाने बुद्ध की विचार-धारा का यह प्रभाव है, अथवा उनके अपने जीवन की कोई भारी पीड़ा? श्रीमती वर्मा के गीत बहुत ही सुकुमार और मीठे हो उठे हैं :

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल ;
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

सौरभ फैला विपुल धूप बन ;
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन ;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल गल !'

जग के राग-द्वेष से अलग मानो कवि ने यह प्रेम का अलख जगाया है। आशा है इन गीतों का आलोक कविता-प्रेमी का पथ सदा आलोकित करता रहेगा।

प्रेमचन्द गाँवों में रहे थे। ग्रामीणों के हृदय की बात वह ख़ूब समझते थे। भारतीय किसान को अभी तक इतना सफल साहित्यिक प्रतिनिधि और नहीं मिला। प्रेमचन्द सफल कलाकार होने के साथ-साथ देश के जीवन से बँधे थे। काल की गति के साथ उनकी कला का मूल्य कम न होगा, वरन् अधिक ही आँका जायगा। मध्ययुग की समाजयोजना उनकी किसान-गाथाओं में भविष्य के लिए सुरक्षित मिलेगी। इसी प्रकार गॉल्ज़वर्दी के Forsyte Saga में इंगलैंड के मध्य-वर्ग का चित्र इतिहासवेत्ताओं को आकर्षित करता रहेगा।

इस पीढ़ी के कलाकारों में विद्रोह की भावना भगवतीचरण वर्मा में बहुत प्रबल थी। इस युग की रीति-नीति से उनका घोर मतभेद है। विवेक के सहारे वे नये युग का निर्माण करने निकले हैं। उनके चित्र जनसाधारण के जीवन को नहीं छूते। नगरों में युवक-टोलियों के साथ उन्होंने सदा जीवन बिताया है। उसी जीवन से उनकी अनुभूति और प्रेरणा है। आपका विचार-दर्शन अहम्परक रहा है।

जैनेन्द्र कुछ खोजने में व्यस्त हैं, पता नहीं क्या? आशा है इस बड़ी भारी खोज के बाद उन्हें कुछ मिलेगा। अपना कोई नया ही पन्थ निकालने की वे धुन में हैं। रूढ़ि-ग्रस्त समाज का ढाँचा आपको भी रुचिकर नहीं, इसी कारण प्रगतिशील कलाकारों में हम आपकी गणना करते हैं। 'परख', 'सुनीता'—'त्याग-पत्र'—में आपकी विचार-धारा की

गति क्रान्तिकारी है। आशा है, आपका कोई निर्दिष्ट लक्ष्य भी है। बीहड़ में भटकते ही आप न रह जायँ, कभी-कभी यह आशंका मन में उठती है।

मधु के बहाने बच्चन ने भी परम्परा की रूढ़ियों का विरोध किया है—

'मैं हृदय में अग्नि लेकर,
एक युग से जल रहा हूँ।'

आपका मधु सांकेतिक है, यह स्पष्ट ही है :

"इस नीले अञ्चल की छाया में
जग-ज्वाला का झुलसाया
आकर शीतल करता काया,
मधु-मरहम का मैं लेपन कर
अच्छा करती उर का छाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!
'मधु घट ले जब करती नर्त्तन,
मेरे नूपुर की छूम-छनन
में लय होता जग का क्रन्दन।'
झूमा करता मानव-जीवन
का क्षण-क्षण बन कर मतवाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!"

नाटककारों में श्रीभुवनेश्वरप्रसाद का नाम विशेष उल्लेखनीय है, यद्यपि शॉ के ऋण-भार से आपने अपने को अधिक दबा लिया है। आपके 'कारवाँ' का दृश्य कुछ विचित्र कौतूहल और आकर्षण लिये है। मरु-भूमि की-सी प्यास लिये इस युग की अतृप्त आकांक्षाओं का यह 'कारवाँ' घंटियाँ बजाता अजीब उच्छृङ्खलता से हमारी आँखों के सामने से निकलता है। स्टेज के संकेतों में दिये—और अलग भी—आपके चित्र विशेष सफल हैं—

'कानपुर के पार्श्व-भाग में लज्जा से मुँह छिपाये कुलियों का निवास-स्थान।'

'एक बीस-बाईस वर्ष की युवती, मलिन वस्त्रों में इस प्रकार दीखती है, जैसे आँसुओं की नीहारिका में नेत्र।'

'पीछे घर का नौकर है जो भाग्य के समान काँप रहा है।'

इस साहित्य में पूँजीवादी वर्ग की विलीन होती हुई संस्कृति की स्पष्ट छाया है और जीवन के बहुत से सपने, आशा, अभिलाषाएँ, स्मृतियाँ।

३

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास भारतेन्दु के साथ शुरू होता है। भारतेन्दु की रचना में हम मध्य युग के झुटपुटे आलोक से निकलकर वर्तमान के प्रकाश में आते हैं। इस युग में हिन्दी ने अपना कलेवर युग-धर्म के अनुकूल बदला। हिन्दी गद्य का निर्माण यहीं से शुरू होता है और मध्य-युग की प्रवृत्तियों से मुड़कर हिन्दी काव्य ने भी अपना ध्यान वर्तमान की ओर पलटा।

अंग्रेज़ी शासन के अन्तर्गत भारतीय समाज और संस्कृति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। नये आविष्कार और एक नई समाज-व्यवस्था, ब्रिटिश सत्ता के चिह्न हमारे बीच आये।

किन्तु सन् '५७ से ही भारत में ब्रिटिश सत्ता के प्रति असंतोष रहा है। मुग़ल शासन और ब्रिटिश शासन में यह अन्तर था कि मुग़ल भारत में बस गये थे। मुग़ल संस्कृति और किसी भी मुस्लिम देश की संस्कृति से विलग भारतीय संस्कृति थी। किन्तु अंग्रेज़ भारत के लिए सदैव विदेशी रहे। उनकी आँख हमेशा इंगलैण्ड पर लगी रही।

साहित्य जीवन का दर्पण है और जीवन की सभी भावनाओं का इसमें प्रतिबिम्ब मिलता है। भारतेन्दु की कृति में अंग्रेज़ी शासन के प्रति उत्साह है, क्योंकि भारतीय समाज को नये शासक वर्ग ने एक बुद्धिवादी संस्कृति के संपर्क में लाकर नया जन्म दिया। साथ ही आर्थिक और राजनैतिक

दासत्व के प्रति इस साहित्य में विरोध-भाव भी है। भारतेन्दु का नाटक 'भारत-दुर्दशा' देश की जागृति का प्रथम चिह्न है।

'रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत-भाई।
हा हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो॥
सबके पहिले जो रूप रङ्ग रस भीनो।
सबके पहिले विद्याफल निज गहि लीनो॥
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

× × ×

'अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी॥
ताहू पै मँहगी काल रोग बिस्तारी।
दिन-दिन दूने दुख ईश देत हा हा री॥
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥'

भारतेन्दु के अन्य समकालीन कवियों में भी इस जागृति के लक्षण प्रकट हुए हैं, श्री बदरीनारायण चौधरी, श्री प्रतापनारायण मिश्र, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' आदि। बंग-भंग के कारण पूरे देश में बिजली-सी दौड़ गई। इसी समय बंकिम बाबू ने अपने क्रान्तिकारी उपन्यास लिखे और 'वन्देमातरम्' गीत की रचना की। हिन्दी के कवियों ने हास्य की शरण ली। श्री बालमुकुन्द गुप्त ने 'भारतमित्र' में अंग्रेजी सरकार बदलने पर लिखा:

'टोरी जायें, लिबरल आयें। भारतवासी धूम मचायें॥
जैसे लिबरल वैसे टोरी। जो परनाला वो ही मोरी॥ होली....'

हिन्दी के जनवादी साहित्य में अगला क़दम 'भारत-भारती' था।

इस पुस्तक का हिन्दी संसार में ख़ूब प्रचार हुआ और पहले सत्याग्रह आन्दोलन के समय तो यह तरुण देश-भक्तों की बाइबिल बन गई। श्री मैथिलीशरण गुप्त की कविता पहले से अब बहुत निखर चुकी है, किन्तु 'भारत-भारती' की लोकप्रियता उनकी अन्य किसी पुस्तक को अब तक नहीं मिली। गुप्त जी ने देशभक्ति की कविता परिमाण में काफ़ी लिखी। 'मातृभूमि' का आपने कितना सुन्दर चित्र खींचा है :

'नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्य - चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है॥
नदियाँ प्रेम - प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं।
बन्दीजन खगवृन्द, शेषफन सिंहासन हैं॥
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

× × ×

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम है।
शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है॥
षट् ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत क्रम है।
हरियाली का फ़र्श नहीं मख़मल से कम है॥
शुचि सुधा सींचता रात में तुझ पर चन्द्र प्रकाश है।
हे मातृभूमि! दिन में तरणि करता तम का नाश है॥
सुरभित, सुन्दर, सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं।
भाँति-भाँति के सरस सुधोपम फल मिलते हैं॥
औषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली।
खानें शोभित कहीं धातु वर रत्नोंवाली॥
जो आवश्यक होते हमें मिलते सभी पदार्थ हैं।
हे मातृभूमि! वसुधा, धरा तेरा नाम यथार्थ है॥

दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी।
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी॥
नदियाँ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी।
पुष्पों से तरु-राजि कर रही पूजा तेरी॥
मृदु मलय वायु मानो तुझे चन्दन चारु चढ़ा रही।
हे मातृभूमि! किसका न तू सात्त्विक भाव बढ़ा रही॥'

गांधीजी के सत्याग्रह-आन्दोलन का देश के जीवन पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। अनेक लेखक और कवि इस तूफ़ान में बह गये। इनमें अग्रगण्य प्रेमचन्द, 'एक भारतीय आत्मा', 'नवीन' और श्रीमती सुभद्रा-कुमारी चौहान थे।

स्व० प्रेमचन्द ने दृढ़ हाथों से साहित्य का रुख जीवन की ओर पलटा। भारत की ग्रामीण और नागरिक समाज-योजना की आपने गम्भीर और मार्मिक विवेचना की। समाज के शोषक और शोषित वर्गों की पहेली को आपने समझा और इन समस्याओं का अपनी कहानियों में विशद चित्रण किया। स्व० प्रेमचन्द अपने जीवन के लगभग अन्त तक गांधी-वादी रहे और अपने साहित्य में इस आशा को स्थान देते रहे कि हृदय-परिवर्त्तन से समाज सुधर जायगा। यह आशा का अंकुर पहले 'प्रेमाश्रम' में लगा था, किन्तु 'गो-दान' में नष्ट हो चुका है। 'कफ़न' आदि कहानी भी हमें एक दूसरे ही दृष्टिकोण का आभास देती हैं। 'समर-यात्रा' का सन्देश यह महारथी हमें निरन्तर सुनाता रहा। आपकी रचना को हम किसानों का अमर गीत कह सकते हैं।

राष्ट्रीय जाग्रति के साथ अनेक गायक भी पैदा हुए, इनमें सबसे अधिक प्रभावशाली 'नवीन' थे। आपने लिखा था :

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ—जिससे उथल-पुथल मच जाये।
एक हिलोर इधर से आये एक हिलोर उधर से आये।

प्राणों के लाले पड़ जायें त्राहि-त्राहि रव नभ में छाये।
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाये।
बरसे आग, जलद जल जायें, भस्मसात् भूधर हो जायें।
पाप-पुण्य, सदसद्भावों की, धूल उड़ उठे दायें बायें।
नभ का वक्षस्थल फट जाये, तारे टूक टूक हो जायें।
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये॥"

आपने 'गान्धी गुरुदेव', 'मानव', 'पराजय-गान' आदि अनेक शक्ति-पूर्ण कविताएँ लिखीं। गान्धीजी को आपने 'ओ क्षुरस्य-धारा-पथ-गामी !' कहकर सम्बोधित किया है। 'पराजय-गान' पहले सत्याग्रह-आन्दोलन की पराजय के बाद लिखा गया था :

'आज खड्ग की धार कुण्ठिता, है ख़ाली तूणीर हुआ !
विजय-पताका झुकी हुई है, लक्ष्य-भ्रष्ट यह तीर हुआ—'

'मानव' लम्बी कविता है। इसमें आपने मनुष्य के विकास की रेखाएँ खींची हैं, आदिम युग से आज तक।

'नवीन' की श्रेणी में और भी अनेक समकालीन कवि आते हैं, 'एक भारतीय आत्मा', 'त्रिशूल-सनेही', श्री रामनरेश त्रिपाठी, सुश्री सुभद्रा-कुमारी चौहान। इन सभी के काव्य में भारत की राष्ट्रीय भावनाओं का उत्तेजित स्वर है।

इस संघर्ष के युग में देश अपनी पराधीनता और शृङ्खलाओं की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। वह दुःसह भार न सहन कर सकने के कारण इस युग के कवियों ने कल्पना के जग में शरण ली। सर्वथा अन्त-र्मुखी होकर कवियों की प्रेरणा सोने-चाँदी के ताने-बानों से शब्द-जाल बुनने लगी। 'प्रसाद' अतीत के सपने देखने लगे। किन्तु ये कवि जीवन से विलग न हो पाये और एक मधुर पीड़ा-भार से उनका काव्य आक्रान्त हो उठा :

'मृग-मरीचिका के चिर पथ पर
सुख आता प्यासों के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर—'

छायावादी कवियों की रचना में देश का क्रन्दन निरन्तर प्रतिध्वनित हुआ है। पन्त का 'परिवर्तन' इसका उदाहरण है। इतिहास के स्वर्ण-पट को निरन्तर देखते हुए पन्त कहते हैं :

'कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?'

अतीत से वर्तमान की तुलना करके इस भीषण 'परिवर्तन' पर कवि का विकल हृदय हाहाकार कर उठा है :

'अहे निष्ठुर परिवर्त्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव-नर्त्तन, विश्व का करुण-विवर्त्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन, निखिल उत्थान, पतन !'

'युगान्त' की अन्तिम कविता 'बापू के प्रति' पन्त की प्रतिभा के एक युग के अन्त होने की सूचना थी। यद्यपि मनन और चिन्तन अब भी पन्त के प्रधान काव्य-गुण हैं, वह हमारी सामाजिक विडम्बना को देखते हैं, और कल्पना के गुम्बद से बाहर निकल आते हैं। 'युगान्त' से 'युग-वाणी' सहज और स्वाभाविक विकास-क्रम है। नरेन्द्र ने 'युग-वाणी' के पन्त को 'वर्गहीन बुद्धिवादी' कहा है। बहुत हद तक यह कविताएँ प्रयोगात्मक हैं। अतीत से मुड़कर वह वर्तमान और भविष्य की ओर उन्मुख हुए हैं। 'ग्राम्या' में पन्त ने अपना सर्वश्रेष्ठ काव्य रचा।

छायावादी कवियों ने हिन्दी काव्य के टेकनीक में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया और कविता को नया जीवन प्रदान किया। इस कार्य में 'निराला' सबसे आगे थे। आपने नये स्वरों और ताल में कविता का संगीत रचा। साथ ही आप देश के जीवन से विरक्त न थे :

'जागो फिर एक बार !
उगे अरुणाचल में रवि,

आई भारती-रति कवि कण्ठ में,
पल-पल में परिवर्तित होते रहे प्रकृति-पट
गया दिन, आई रात,
मुदी रात, खुला दिन,
ऐसे ही संसार के
बीते दिन पक्ष-मास,
वर्ष कितने ही हज़ार।
जागो फिर एक बार !'

विचित्र स्वर-लहरी में सजा आप 'भारत की विधवा' के प्रति अपने विचार प्रकट करते हैं।

'वह इष्ट-देव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है।'

इन बन्धन-मुक्त छन्दों में आपने बन्दी समाज को स्वतन्त्रता और एक नये युग का सन्देश सुनाया है :

'ताल-ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय-कपाट,
खोल दे कर-कर कठिन प्रहार—'

हिन्दी के आधुनिक प्रगतिशील कवियों में 'दिनकर' का स्थान उल्लेखनीय है। यौवन के स्वप्न और कल्पना आपने देश के ऊपर न्यौछावर कर दिये हैं। आपकी कविता कहती है :

'आज न उड़ के नील-कुञ्ज में स्वप्न खोजने जाऊँगी
आज चमेली में न चन्द्र-किरणों से चित्र बनाऊँगी—'

आप कल्पना के व्योम में उड़ने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु :

रह-रह पंखहीन खग-सा मैं गिर पड़ता भू की हलचल में ;
झटिका एक बहा ले जाती स्वप्न-राज्य आँसू के जल में।'

अब 'चाँदी का शंख' उठाकर आप उसमें 'भैरव-हुंकार' फूँक रहे हैं और इस युग को जय का सन्देश सुनाते हैं :

'जागरूक की जय निश्चित है, हार चुके सोनेवाले !

× × ×

मंज़िल दूर नहीं अपनी दुख का बोझा ढोनेवाले !'

'नई दिल्ली', 'विपथगा', 'हिमालय', 'भविष्य की आहट' आदि अनेक अमर गीतों की आपने रचना की है। क्रान्ति के अनेक शक्तिशाली चित्र आपने खींचे हैं :

'अँगड़ाई में भूचाल, साँस में लङ्का के उनचास पवन।'

× × ×

'मेरे मस्तक के छत्र मुकुट वसु-काल-सर्पिणी के शत फन
मुझ चिर कुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रुधिर-चन्दन
आँजा करती हूँ चिता-धूम का दृग में अन्ध तिमिर-अंजन
संहार-लपट का चीर पहन नाचा करती मैं छूम-छनन—'

× × ×

'पायल की पहली झमक सृष्टि में कोलाहल छा जाता है
पड़ते जिस ओर चरण मेरे भूगोल उधर दब जाता है।'

'दिनकर' के काव्य का सबसे उपयुक्त विवेचन उन्हीं के शब्दों में हो सकता है :

'समय ढूह की ओर सिसकते मेरे गीत विकल धाये,
आज खोजते उन्हें बुलाते वर्तमान के पल आये।'

'वर्तमान के पल' आज हिन्दी के सभी कवियों को बुला रहे हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा की 'भैंसागाड़ी' इसी प्रवृत्ति का इशारा है। नरेन्द्र ने 'प्रभात-फेरी' से 'ज्येष्ठ के मध्याह्न' और 'लाल निशान' तक इस पथ को

अपनाया है। 'प्रवासी के गीत' हमारी निराशा के गहरेपन का आभास देते हैं। जिस छायावाद से पन्त और 'निराला' ने हिन्दी के नवीन युग का श्रीगणेश किया था वह अस्तप्राय है। हिन्दी के नए कवि 'सुमन' नागार्जुन और रांगेय राघव की नई कविताएँ इस विचार की पुष्टि करती हैं।

इस परिवर्तन का बहुत कुछ श्रेय प्रगतिशील-लेखक-संघ को है। सन् १६३५ में नवम्बर के कोहरे-भरे दिनों में कुछ भारतीय विद्यार्थियों के एक छोटे-से दल ने नैनकिङ्ग रेस्टोरॉं में भारतीय प्रगतिशील-लेखक-संघ की स्थापना की। इनमें डा० मुल्कराज आनन्द, सज्जाद ज़हीर आदि प्रमुख थे। पहली भारतीय कॉन्फ्रेंस लखनऊ में एप्रिल १६३६ में हुई। इसके सभापति स्वर्गीय प्रेमचन्द थे। दूसरी कॉन्फ्रेंस कलकत्ता में दिसम्बर १६३८ में रवि बाबू की अध्यक्षता में हुई। इन कुछ ही वर्षों में हमारे साहित्य और कला-सम्बन्धी विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ।

युद्ध और तानाशाही संस्कृति के सबसे बड़े शत्रु हैं। आत्म-रक्षा के लिए फ्रांस आदि देशों में लेखकों ने एक लोहे की दीवार-सी बना ली थी। भारत में आर्थिक विदेशी प्रभाव सामन्तशाही आदि शत्रु हमारी संस्कृति को नहीं पनपते देते। ऐसी अवस्था में लेखकों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि सांस्कृतिक विकास के अनुकूल वातावरण की वह सृष्टि करें।

इस उद्देश्य से भारतीय लेखकों का एक छोटा-सा दल आगे बढ़ा। स्वर्गीय प्रेमचन्द, कवि श्री पन्त, नरेन्द्र, बेनीपुरी, शिवदानसिंह चौहान, यशपाल आदि इस आन्दोलन से प्रभावित हुए। इनकी रचना में समाज और संस्कृति के प्रति एक नये दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इस आन्दोलन से हमारे साहित्य में नया जीवन और बल आ गया है।

प्रगतिशील दल के एक मुख्य लेखक मुल्कराज आनन्द हैं। आपने अंग्रेज़ी में अनेक प्रभावशाली उपन्यास लिखे हैं। आपकी कुछ कहानियाँ हिन्दी में भी निकल चुकी हैं। आप निर्मम यथार्थवादी हैं। इसी श्रेणी में सज्जाद ज़हीर, अहमद अली आदि आते हैं। ज़हीर का एकांकी

'बीमार' और अहमद अली की कहानी 'हमारी गली' ख्याति पा चुके हैं। वास्तव में यह दोनों उर्दू के लेखक हैं। बेनीपुरी में हम इस आन्दोलन का प्रभाव अच्छी तरह तौल सकते हैं। बेनीपुरी हिन्दी के पुराने लेखक हैं, किन्तु आपकी रचना में नया उत्साह और बल आया। 'देहाती दुनिया' की 'लाल तारा' से कुछ तुलना नहीं। 'लाल तारा' नए साहित्य में अपना अलग स्थान रखती है। एक नये युग का सन्देश लेकर यह 'लाल तारा' हमारे आकाश में उदय हुआ। इसके बाद असंख्य नए लेखक प्रगति-शील साहित्य की पंक्तियों में आए हैं।

कविता

१

हिन्दी-साहित्य का 'सरस्वती' के प्रति विशेष आभार है, जिसने रूढ़ि-ग्रस्त काव्य-परम्परा को नया पथ सुझाया। 'सरस्वती' के अभ्युदय काल तक हिन्दी की कविता ब्रजभाषा में लिखी जाती थी, किन्तु गद्य खड़ी बोली में। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की नीति के कारण हिन्दी कविता की भाषा भी आधुनिक जीवन के अधिक निकट आ गई।

इस दृढ़ नींव पर आधुनिक हिन्दी कविता का भव्य प्रासाद खड़ा हुआ। श्री मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में प्रौढ़ता देर में आई। 'साकेत', 'यशोधरा' और 'पंचवटी' के सामने 'भारत-भारती' और 'जयद्रथ-वध' अपरिपक्व हैं। गुप्तजी का विशेष गुण आपकी भगवद्भक्ति और अनवरत अध्यवसाय है। कहते हैं कि कवि बन नहीं सकते, जन्मते हैं। यह कथन आप पर नहीं लागू होता। अपने सतत परिश्रम से ही आप कवि बने हैं। हिन्दी कविता के आज आप सिरमौर हैं और मर्म छूनेवाली कविता आपकी वाणी से फूटी है :

'सखि, वे मुझसे कहकर जाते,
स्वयं सुसज्जित करके रण में;
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में;
क्षात्र धर्म के नाते।....'

आधुनिक हिन्दी कविता के वास्तविक युग-प्रवर्तक पन्त थे, यद्यपि 'प्रसाद' और 'निराला' समय में उनसे पहले आये। 'प्रसाद' और 'निराला' स्वयं बड़े कवि थे; किन्तु उनकी कविता का युवक-समाज पर वह प्रभाव नहीं पड़ा, जो पन्त का। पन्त की 'वीणा' ने मानो युगों की सोई कविता-कुमारी को अनायास ही जगा दिया।

इस नई हिन्दी कविता का 'छायावाद', 'रहस्यवाद', आदि नामकरण लेकर घोर वितण्डावाद भी चला, जो अब ठंडा पड़ गया है। अंग्रेज़ी और बँगला साहित्य की इस काव्य पर गहरी छाप थी। इस नये वेश-विन्यास में कविता-नागरी का रूप पुराने पारखी न समझ पाये।

नये ढंग के टूटे-से छंदों में नये ही विषयों पर यह कविगण अपने राग अलाप रहे थे। जो दूर देश से किसी अनजान शक्ति का सन्देश इन्हें मिला था, उसे किसी ने समझा, किसी ने नहीं। किन्तु ये अपना स्वर साधकर कहते ही रहे :

'हमें जाना है जग के पार।—
जहाँ नयनों से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती नव-रस-धार—
वहीं जाना, इस जग के पार।'

कवि के चिर-अन्ध नयन खुलते ही उसने एक सुन्दर स्वर्णिम जग अपने चारों ओर पाया '

'कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम ?
अये अभिनव, अभिराम !'

यह विस्मय-भाव चाहे जिस नाम से पुकार लिया जाय, अनुभूति इस कविता में अवश्य थी।

नवयुग के सूत्रधार 'प्रसाद' आधुनिक हिन्दी कविता को आगे बढ़ाकर दिवंगत हो चुके हैं। 'आँसू', 'झरना', 'लहर' और 'कामायनी' लम्बी यात्रा के चिह्न चिरकाल तक आपके स्मारक रहेंगे। आधुनिक हिन्दी कविता का पीड़ा के प्रति मोह 'प्रसाद' की रचना से ही शुरू हो जाता है। 'आँसू' के मुख-पृष्ठ पर ही आपका यह छन्द था :

'जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई !'

'प्रसाद' उच्चकोटि के शिल्पकार हैं। आप मत-मतान्तर में नहीं फँसे। उच्च कला की सृष्टि आपका ध्येय था। सतत सुन्दरता की खोज में आप लगे रहे; जहाँ वह मिली, वहीं से उसे बटोर लिया।

'झरना' में 'प्रसाद' की कविता का प्रारम्भिक रूप है। आपके काव्य के यहाँ परमाणु हैं किन्तु मानो अभी बिखरे हुए हैं। आगे चलकर इन्होंने 'प्रसाद' के अनन्य जगत् की सृष्टि की :

'विश्व के नीरव निर्जन में।
जब करता हूँ बेकल, चंचल,
मानस को कुछ शान्त,
होती है कुछ ऐसी हलचल,
हो जाता है भ्रान्त;
भटकता है भ्रम के वन में,
विश्व के कुसुमित कानन में।'

'आँसू' 'प्रसाद' की कला का उत्कृष्ट नमूना है। यह कवि के हृदय का मर्मस्पर्शी क्रन्दन है—

'आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी,
टकराती बिलखाती-सी
पगली-सी देती फेरी ?'

'आँसू' में अनेक सुन्दर चित्र हैं :

'शीतल ज्वाला जलती है,
ईंधन होता दृगजल का;
यह व्यर्थ साँस चल चलकर
करता है काल अनिल का।'

× × ×

'जल उठा स्नेह दीपक-सा
नवनीत हृदय था मेरा;
अब शेष धूल-रेखा से
चित्रित कर रहा अँधेरा।'

'आँसू' में कवि के हृदय की प्रणय-भावना भी व्यक्त हुई है। इन पंक्तियों में हिन्दी के आधुनिक रहस्यवाद की कुछ झलक है। कहीं-कहीं 'प्रसाद' की विलास-प्रियता भी दीख पड़ती है :

'शशि-मुख पर घूँघट डाले
अञ्चल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में
कौतूहल-से तुम आये !

× × ×

काली आँखों में कैसी
यौवन के मद की लाली,

मानिक-मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली !

× × ×

तुम सत्य रहे चिर सुन्दर,
मेरे इस मिथ्या जग के !
थे कभी न क्या तुम साथी
कल्याण-कलित मम-मग के ।'

'आँसू' के बाद 'प्रसाद' की कविता द्रुत-गति से आगे बढ़ी और आपने अनेक अमर पदों की रचना की ।

'बीती विभावरी, जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही, तारा-घट उषा नागरी ।'

अथवा—

'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे ।'

अन्त में अमर-काव्य 'कामायनी' की रचना कर आप इस लोक से चल दिये । 'कामायनी' हिन्दी-काव्य का एक उत्तुङ्ग गिरि-शृंग है और साहित्य को 'प्रसाद' की सबसे बड़ी देन । 'कामायनी' में 'प्रसाद' की कहानी, नाट्य और काव्यकला का अपूर्व सम्मिलन हुआ है ।

'निराला' जी हिन्दी कवियों में शक्ति के उपासक हैं । आपके काव्य में सहज माधुरी की अवहेलना-सी है, यद्यपि उमंग आने पर आप मीठी तान भी छेड़ सकते हैं । 'प्रसाद' जी को आपकी 'मतवाला' के मुख-पृष्ठ-वाली पंक्तियाँ बहुत पसन्द थीं :

'अमिय-गरल शशि सीकर-रविकर राग-विराग भरा प्याला ।
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह 'मतवाला' ।'

आपकी कविता का संगीत आपके मुख से सुनने पर पूरी तरह प्रकट होता है । स्वर साधकर गम्भीर कण्ठ से आप जब अपनी कविता सुनाते हैं, तो प्रकृति की अपेक्षा पुरुष का ही भान अधिक होता है ।

हिन्दी कविता में आपने नये मुक्तक छन्दों का प्रयोग किया और एक भग्न-से किन्तु आकर्षक संगीत की सृष्टि की। आपके काव्य में कुछ नई ही गति और प्रवाह है :

'नव-गति, नव-लय, ताल-छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्र रव,
नव नभ के नव विहग-वृन्द को
नव पर, नव स्वर दे !'

'निराला' हिन्दी के क्रान्तिकारी कलाकार हैं। आपने रूढ़िवाद को पग-पग पर कुचला है। आपका शब्द-विन्यास भी कुछ नया ही है :

'छंद की बाढ़, वृष्टि अनुराग,
भर गये रे भावों के झाग।
तान, सरिता वह स्वस्त अरोर,
बह रही ज्ञानोदधि की ओर
कटी रूढ़ि के प्राण की डोर,
देखता हूँ अहरह मैं जाग।'

आपकी कविता में प्रकृति का और जीवन का सौंदर्य प्रतिबिम्बित है, किन्तु जीवन का कठोर सत्य अंकित करना भी आप नहीं भूलते :

'डूबा रवि अस्ताचल,
सन्ध्या के दृग छल-छल।'

वीणा-वादिनी से आपकी प्रार्थना है :

'जग को ज्योतिर्मय कर दो !
प्रिय कोमल-पद-गामिनि ! मन्द उतर
जीवन-मृत तरु-तृण-गुल्मों की पृथ्वी पर
हँस-हँस निज पथ आलोकित कर,
नूतन जीवन भर दो !'

पन्त की कविता का हिन्दी की युवा-मण्डली पर भारी प्रभाव पड़ा। रूढ़ियों में फँसी हिन्दी कविता आपका अनुसरण कर नई दिशाओं की ओर बढ़ी और कविता के कंकाल में नवजीवन का संचार हुआ।

'वीणा', 'पल्लव', 'गुञ्जन', 'युगान्त', 'युग-वाणी' और 'ग्राम्या' आपकी यात्रा के पद-चिह्न हैं। हिन्दी कविता एक परिपाटी के दलदल में फँस चुकी थी। आपने मानो दिव्य नेत्रों से जगत् में एक अभिनव अनहोना सौंदर्य देखा और विस्मय-पुलक आपके कण्ठ से गीत के रूप में उमड़ पड़ा। 'सरस्वती' में लगातार कई मास जो आपकी कविताएँ निकली थीं, उनमें विद्युत् का आकर्षण और शक्ति थी। 'साँकरी गली में माय काँकरी गड़तु हैं' सुन्दर चीज़ थी; किन्तु इसे हम कब तक दुहराते? 'सुन सखि, फिर वह मनमोहिनी माधव-मुरली बजती है' यह वस्तु भी सुन्दर थी। किन्तु हम जो दीर्घकाल से साहित्य-प्रेरणा से जी रहे थे, अब फिर जीवन की ओर मुड़े और हमने जीवन का सौंदर्य देखा :

'अरे, ये पल्लव बाल!
सजा सुमनों के सौरभ-हार
गूँथते वे उपहार;
अभी तो हैं ये नवल-प्रवाल
नहीं छूटी तरु डाल;
विश्व पर विस्मित-चितवन डाल,
हिलाते अधर-प्रवाल!'

अथवा

'बाँसों का झुरमुट—
सन्ध्या का झुटपुट—
हैं चहक रही चिड़ियाँ
टी-वी-टी—टुट्-टुट्!'

'युग-वाणी' से पहले पन्त की काव्य-प्रेरणा में माधुरी थी। आपने

जीवन में सुख और दुःख का अतिरेक देखा था और जग का विधान आपको ग्राह्य न था, फिर भी वसन्त और उषा की श्री देखकर आप मन बहला लेते थे, और आपके शान्त मानस में कोई भूकम्प की लहरें न उठती थीं :

'मैं नहीं चाहता चिर सुख,
चाहता नही अविरत-दुख;
सुख-दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख।'

जीवन से आप विमुख हैं, यह कहना अनुचित होगा। 'परिवर्तन' और 'बापू के प्रति' कविताओं में इस देश और युग की वाणी मुखरित हो उठी है। 'परिवर्तन' देश का क्रन्दननाद है :

'रुधिर के हैं जगती के प्रात,
चितानल के ये सायङ्काल;
शून्य-निःश्वासों के आकाश,
आँसुओं के ये सिन्धु विशाल;
यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु,
अरे, जग है जग का कङ्काल !!'

'रूपाभ' के जन्म-काल से आपकी कविता ने फिर रुख़ पलटा है। समाजवाद से प्रभावित होकर आपकी कविता में नया रूप-रंग आया है। यह कविता हमारे विवेक को जगाती है। 'मार्क्स के प्रति' आप कहते हैं :

'दन्तकथा, वीरों की गाथा, सत्य, नहीं इतिहास,
सम्राटों की विजय-लालसा, ललना-भृकुटि-विलास;
दैव नियति का निर्भय क्रीड़ा-चक्र न वह उच्छृङ्खल,
धर्मान्धता, नीति, संस्कृति का ही केवल समरस्थल।
साक्षी है इतिहास,—किया तुमने निर्भय उद्घोषित
प्रकृति विजित कर मानव ने की विश्व-सभ्यता स्थापित।'

पन्तजी का एक सफल रूप हम प्रकृति के कवि और गीतकार में भी देखते हैं। वसन्त और वर्षा, उषा और सन्ध्या, धूप और छाया—आपके काव्य में अपूर्व माधुरी लेकर प्रकट हुए हैं। 'युग-वाणी' और 'ग्राम्या' में भी अनोखा रूप लेकर प्रकृति आई है :

सर् सर् मर् मर्
रेशम के-से स्वर भर,
घने नीम दल
लम्बे, पतले, चञ्चल
श्वसन स्पर्श से
रोम हर्ष से
हिल-हिल उठते प्रति पल !
वृक्ष शिखर से भू पर
शत-शत-मिश्रित ध्वनि कर
फूट पड़ा लो निर्झर—'

इस अभिनव रूप-जगत् के विश्वकर्मा के प्रति पाठक बड़ा कृतज्ञ है।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने गीति-काव्य को अपनाया है। आपकी कविता में मिठास कूट-कूटकर भरी है। आज हिन्दी-कविता के क्षेत्र में अन्य कोई कवि ऐसा नहीं, जिसकी रचना में इतनी मधुरिमा भरी हो। आपके काव्य की शिल्प-कला से तुलना हो सकती है; अनन्य पचीकारी आपकी कृति में है। आपके अनेक शब्द-चित्र स्मरणीय हैं :

'शून्य नभ में तम का चुम्बन,
जला देता असंख्य उडुगन
बुझा क्यों उनको जाती मूक,
भोर ही उजियाले की फूँक ?'

अथवा

'मृगमरीचिका के चिर पग धर,
सुख आता प्यासों के पग धर—'

'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्य-गीत' आपके काव्य प्रासाद के स्तंभ हैं। इस प्रासाद में प्रतीक्षा का दीप जला कर आपने अपना गीत उठाया है। इस गीत के स्वर निरन्तर अधिक सधे और मीठे होते जा रहे हैं :

'तंद्रिल निशीथ में ले आये
गायक तुम अपनी अमर बीन !
प्राणों में भरने स्वर नवीन !'

इस गीत की तान निरन्तर ही करुण और व्यथा-भरी है। कवयित्री चिरकाल से ही पीड़ा की ओर खिंची हैं। महादेवीजी ने स्वयं अपने दुःखवाद का कारण 'रश्मि' में समझने और समझाने का प्रयत्न किया है :

'दुख के पद छू बहते झर-झर
कण कण से आँसू के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर—'

आपके दुःखवाद की चरम सीमा मोम की भाँति गल-गलकर प्रियतम का पथ आलोकित करने में होती है :

'मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर !'

यह विचार अवश्य मन में आता है कि यह अतिशय मिठास और पीड़ा आधुनिक हिन्दी काव्य के प्रथम क्षय-चिह्न न हों। आप कहती हैं :

'जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर !
दोनों मिल कर देते रजकण,
चिर करुणमधुर सुन्दर सुन्दर !

जग पतझर का नीरव रसाल,
पहने हिमजल की अश्रुमाल;
मैं पिक बन जाती डाल-डाल,
सुन फूट-फूट उठते पल-पल
सुख-दुख मञ्जरियों के अंकुर !'

हिन्दी काव्य में एक बहुत जाग्रत शक्ति श्री भगवतीचरण वर्मा रहे हैं। वर्षों पहले 'नूरजहाँ की क़ब्र पर' लिखी कविता से 'भैंसा-गाड़ी' तक आपने अनवरत काव्य-साधना की है। इसका प्रमाण आप के 'मधु-कण' और 'प्रेम-संगीत' हैं :

आपका व्यक्तित्व आपकी ही पंक्तियाँ उचित रूप से व्यक्त करती हैं।

'हम दीवानों की क्या हस्ती,
हम आज यहाँ कल वहाँ चले।
मस्ती का आलम साथ चला
हम धूल उड़ाते जहाँ चले—'

आपकी कविता का मुख्य नोट अतृप्त पिपासा और जीवन के प्रति घोर असन्तोष है। यह प्रतिध्वनि निरन्तर आपकी कविता से उठती है :

'अब अन्तर में आह्लाद नहीं, अब अन्तर में अवसाद नहीं,
अब अन्तर में उन्माद नहीं, मैं अन्तर को कर चुका नष्ट !'

आपके 'प्रेम-संगीत' में भी निराशा का ही प्राधान्य है :

'जीवन सरिता की लहर-लहर
मिटने को बनती यहाँ प्रिये।
संयोग क्षणिक !—फिर क्या जाने
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये !'

आपका यह असंतोष स्वाभाविक रूप से क्रान्तिकारी विचारधारा में परिणित हुआ। 'रूपाभ' में प्रकाशित 'भैंसागाड़ी' और 'कविजी' इसकी सूचना हैं :

'चरमर-चरमर चूँ-चरर-मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी !'

बड़े दरिद्र ग्राम से यह 'भैंसागाड़ी' आ रही है :

'उस ओर क्षितिज के कुछ आगे,
कुछ पाँच कोस की दूरी पर,
भू की छाती पर फोड़ों-से
हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर !
मैं कहता हूँ खँडहर उसको
पर वे कहते हैं उसे ग्राम--'

आगे नगर का वर्णन है :

'पीछे है पशुता का खँडहर,
दानवता का सामने नगर,
मानव का कृश कंकाल लिये
चरमर-चरमर-चूँ-चरर-मरर
जा रही चली भैंसा गाड़ी !'

हिन्दी कवियों में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और 'एक भारतीय आत्मा' राजनीति में लीन रहे हैं। 'भारतीय आत्मा' ने इधर बहुत कम लिखा है। यह बात विचारणीय है कि इस राजनैतिक तल्लीनता से कवि की साहित्य-सेवा में बाधा पड़ी है, अथवा उसकी वाणी में कुछ नवीन ओज और शक्ति है। 'नवीन' के काव्य में सच्ची प्रेरणा रही है। स्वयं आपके मुख से 'पराजय-गान' जैसी कविता सुनकर रोमांच हो आता है।

'ढुलमुल' से इस 'नवीन' संन्यासी का अलख गान कुछ दिनों के लिए प्रणय-संगीत में परिणित हुआ, किन्तु 'मामव', 'गुरुदेव गांधी' और 'झूठे पत्ते' के साथ फिर वह प्रलयकारी भैरवनाद बना है। आपकी भाषा संस्कृत, उर्दू मिश्रित कुछ ऊबड़-खाबड़-सी शक्ति और ओज-पूर्ण होती है।

'प्रताप' में प्रकाशित 'विजयादशमी' प्राचीन संस्कृति के प्रति सुन्दर और मधुर श्रद्धाञ्जलि थी।

'बच्चन' विकास के पथ पर तीव्रगामी कवि रहे हैं। लोकमत ने आपका नाम 'हालावाद' के साथ जोड़ रखा है, किन्तु आप 'हालावाद' को भी पीछे छोड़ चुके हैं। 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधुकलश', 'निशा-निमंत्रण', 'एकान्त संगीत', 'सतरंगिनी' आदि आपके विकास के पग-चिह्न हैं। मधुशाला के अतिरिक्त आप 'पग-ध्वनि' आदि अनेक कविता लिख चुके हैं जो हिन्दी में प्रसिद्धि पा चुकी हैं। 'पग-ध्वनि' और 'निशा-निमन्त्रण' के गीत 'बच्चन' बड़ी सुन्दरता से और मीठे स्वर से सुनाते हैं।

आपकी कविता में भी जीवन के प्रति घोर असंतोष और विद्रोह भाव है :

'मैं हृदय में अग्नि लेकर
एक युग से जल रहा हूँ—'

अथवा

'हो नियति इच्छा तुम्हारी
पूर्ण, मैं चलता चलूँगा,
पथ सभी मिल एक होंगे
तम-घिरे यम के नगर में !'

'निशा-निमन्त्रण' में आपकी कविता दुःख में अधिक गहरी रँग गई है और आपकी कला बहुत मँज गई है :

'संध्या सिंदूर लुटाती है।
रँगती स्वर्णिम रज से सुन्दर,
निज नीड़-अधीर खगों के पर,
तरुओं की डाली-डाली में कंचन के पात लगाती है।
करती सरिता का जल पीला
जो था पल भर पहले नीला,
नावों के पालों को सोने की चादर-सा चमकाती है।

उपहार हमें भी मिलता है,
श्रृङ्गार हमें भी मिलता है,
आँसू की बूँद कपोलों पर शोणित की-सी बन जाती है।
सन्ध्या सिंदूर लुटाती है।'

आज हिन्दी में अनेक कवि विकासशील और जाग्रत हैं, और हिन्दी कविता का भण्डार भर रहे हैं। डा० रामकुमार वर्मा, गुरुभक्त सिंह, आरसीप्रसाद सिंह, सियारामशरण गुप्त, 'दिनकर', 'अज्ञेय', 'अंचल' आदि। तरुण कवियों में एक प्रगतिशील कवि नरेन्द्र हैं। आपके काव्य का सहज संगीत तो आकर्षक है ही :

'पके जामुन के रँग का पाग
बाँधता लो आया आषाढ़ !'

आपकी 'प्रभात-फेरी' ने हमें स्वतंत्रता का संदेश भी सुनाया है :

'आओ, हथकड़ियाँ तड़का दूँ,
जागो रे नतशिर बन्दी !'

आपकी 'प्रयाग', 'भावी पत्नी', 'चिता', 'बबूल', 'मरघट का पीपल' आदि कविताओं में शक्ति और प्रबल प्रवाह है और भविष्य के लिए बड़ी आशा :

'चढ़ लपटों के स्वर्ण गरुड़ पर
फैलेगी जागृत की ज्वाला !'

आज कल हिन्दी कविता में 'छायावाद', 'दुःखवाद', 'हालावाद', 'प्रगतिवाद' आदि अनेक नाम सुन पड़ते हैं। यह हमारी प्रगति का प्रमाण है और हमारी जागृति का चिह्न।

आधुनिक हिन्दी-काव्य ने जिस अज्ञात, रहस्यमय जग को अपने चारों ओर पाया है, उसका विस्मित वर्णन 'छायावाद' के नाम से प्रचलित हुआ है। इस काव्य में प्रकृति के सुनहले और रुपहले रूप का भी बड़ा सुन्दर वर्णन है; उषा का अरुण, गुलाबी पथ, अँधियाले का नीला, तारक-खचित

परिधान, ऋतुओं का परिवर्त्तन, सागर-लहरी का मधुर संगीत और झंझा का ताण्डव नर्त्तन।

अधिकतर यह काव्य अन्तर्मुखी रहा है। कवि अपनी व्यक्तिगत आशा, अभिलाषा और निराशा में जगत् को रँगा पाता है। बाह्य जग केवल उसकी आत्मा की प्रतिध्वनि है। प्रकृति के उल्लास और पीड़ा में वह अपनी आत्म-कथा छिपी देखता है। गीति-काव्य अकसर अहंभाव से पूरित रहा है।

बड़ी हद तक देश और काल की परिस्थिति आधुनिक हिन्दी-काव्य के दुःखवाद का स्पष्टीकरण करती है। यद्यपि हमारी समाज-योजना आज दुःखप्रद और निराशाजनक दीखती है, किन्तु कुछ कवियों ने दूर क्षितिज पर नव प्रभात का अरुण आलोक भी देखा है और उनके गीत में नवीन उल्लास है :

'है आज गया कोई मेरे
तन में, प्राणों में यौवन भर।'

आधुनिक हिन्दी-कविता जीवन के साथ बँध रही है। देश और समाज में जो क्रान्ति हो रही है, उसकी स्पष्ट छाया हमारे काव्य पर पड़ रही है। इसके साक्षी पन्त, 'निराला', भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र, 'दिनकर', 'सुमन', नागार्जुन, केदार आदि कवि हैं।

२

आज हिन्दी कविता दो धाराओं में बँट रही है; एक क्षीण, सूखती हुई; दूसरी बलवती, तीव्रगामी। पहली धारा के प्रतिनिधि कवि रामकुमार वर्मा आदि हैं; दूसरी के पन्त, 'निराला', नरेन्द्र, 'सुमन' आदि। हमारे समाज और साहित्य में भी यह श्रेणी-विभाजन स्पष्ट है; एक दल पुराने संस्कारों से बँधकर चलने के प्रयत्न में असमर्थ; दूसरा बन्धन तोड़कर एक नवीन संस्कृति की रचना में लीन है।

समाज में दीर्घकाल से श्रेणी-विभाजन चला आ रहा है और संस्कृति एक लम्बे अर्से से शासक-श्रेणी की सम्पत्ति रही है, किन्तु इतिहास के

आरम्भ में जब व्यक्तिगत पूँजी न थी, समाज में श्रेणियाँ भी न थीं। आज समाज का श्रेणी-संघर्ष भयानक रूप धारण कर रहा है, क्योंकि वर्ग-संस्कृति का अन्त समीप है। निकट भविष्य में ही समाज से वर्ग निकल जायँगे और एक नई संस्कृति की स्थापना होगी। संसार के एक छठे हिस्से में इस संस्कृति का निर्माण हो भी रहा है।

समाज की इन दो शक्तियों का संघर्ष साहित्य में भी स्पष्ट हो रहा है। एक दल पुराने मूल्यों को प्राणपण के साथ कलेजे से चिपकाये है; उसने ऊँची दीवारों से अपने को घेर रक्खा है। वह कला की दुहाई देता है और जीवन की उपेक्षा करता है। शाश्वत सत्य की मृगतृष्णा में वह भटक कर रह जाता है। किन्तु जिस समाज को वह शाश्वत समझता है, उसकी बुनियादें हिल चुकी हैं।

एक पल के लिए इन संस्कारी कवियों का दृष्टिकोण समझना चाहिए। वे कहते हैं कि कवि अपने स्वप्नों को मसिबद्ध करता है; उसे आज और कल से क्या मतलब ? उसकी रचना युग-युग पर्यन्त पढ़ी जायगी। मकड़ी की तरह अपने ही अन्तर से वह सतत जाला बुनता रहता है; ईंट और गारे की उसे क्या आवश्यकता ?

किन्तु ठीक से सोचने पर हम देखेंगे कि कला का जीवन-संघर्ष से अटूट सम्बन्ध है और समाज के विकास अथवा ह्रास के साथ कला का भी उत्थान और पतन है। कला के पीछे जो भाव-चेतना होती है उसका आधार जीवन की शक्तियाँ हैं। कवि एक चेतना के संसार में अपने नेत्र खोलता है; उसके व्यक्तित्व का उस भौतिक संसार से संघर्ष होता है; उसे लिखने को प्रेरणा मिलती है।

आज क्यों हिन्दी के संस्कारी कवियों का भाव-स्रोत सूख रहा है और इनकी सूखती गीत-धारा में इतनी पीड़ा और कटुता है ? कल्पना के प्रासादों में कब तक रहकर उन्हें सान्त्वना मिल सकती थी ?

जीवन में उनकी सब अभिलाषाएँ कुचली जा चुकी हैं; केवल उनका मर्माहत अभिमान उनका साथी बचा है :

'क्षतशीश मगर नतशीश नहीं ।'

किन्तु खँडहरों का मोह उनके पैर बाँधे हुए है :

'अब खँडहर भी टूट रहा है,
गायन से गुञ्जित दीवारें ।
दिखलाती हैं दीर्घ दरारें,
जिनसे करुण, कर्णकटु, कर्कश, भयकारी स्वर फूट रहा है ।'

बच्चन जिस गति और वेग से 'निशा-निमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' में बढ़े थे, उसमें शिथिलता आ चुकी है । एक हद तक ये कवि अपने में ही लीन हैं; बाहर के जग की प्रतिध्वनियाँ इनके कल्पना-भवन में दबी-दबी ही आती हैं, अतः उनके भाव-जगत् की तरलता सूख रही है । महादेवीजी ने अपने गीतों में नक्काशी हद दरजे तक पहुँचा दी, किन्तु बंगाल के अकाल ने आपकी प्रेरणा का द्वार फिर से खोला । बच्चन अन्दर ही अन्दर घुटकर विषपान कर रहे थे :

'विष का स्वाद बताना होगा !
ढाली थी मदिरा की प्याली,
चूमी थी अधरों की लाली,
कालकूट आनेवाला अब, देख नहीं घबराना होगा !'

अथवा—

'कोई विरला विष खाता है !'

इन कवियों को व्यक्तिगत जीवन की विषमताओं ने लिखने की प्रेरणा दी; उस पर जितना भव्य कला-भवन बन सकता था, वे बना चुके । उनके आगे बढ़ने का मार्ग बन्द था । उनके व्यक्तिगत जीवन में कोई नवीन परिस्थिति अथवा भौतिक बाह्य संसार से नवीन संपर्क ही अब उस रुँधे मार्ग को खोल सकते थे । बंगाल के अकाल के समान देश की

क्रान्तिकारी परिस्थिति या उनके विचारों में आमूल परिवर्त्तन कर रही हैं।

दूसरी धारा के प्रतिनिधि कवि बहुत तेज़ी से आगे बढ़ रहे हैं। पन्त की प्रेरणा विशेष सजग और तरल रही है। 'ग्राम्या' की कविताएँ दिसम्बर १६३६ से फरवरी १६४० तक केवल तीन महीनों में लिखी गई हैं। साथ ही कला के प्रति जो उदासीनता 'युगवाणी' की कुछ बौद्धिक रचनाओं में थी, वह 'ग्राम्या' में नहीं। 'ग्राम्या' की अनेक कविताएँ इस युग की प्रौढ़तम रचनाएँ हैं। इसी प्रकार भगवती बाबू, 'नवीन', 'दिन-कर', नरेन्द्र, 'सुमन' आदि के काव्य में हम अदम्य वेग और शक्ति देखते हैं।

इसका कारण स्पष्ट है। हमारे समाज में जो शक्तियाँ प्रगतिशील हैं, उनके प्रतिनिधि यह कवि हैं। सांस्कृतिक संघर्ष में जो शक्तियाँ बल पकड़ रही हैं, उनकी रचना में ओज और बल होगा ही।

इन कवियों में एक टोली राष्ट्रीय विचारों को लेकर चली है, दूसरी समाजवाद को। आज भारत की समरभूमि में राष्ट्रीय और समाजवादी दोनों कवि ही प्रगतिशील हैं, किन्तु एक दिन राष्ट्रीय कवियों को भी निश्चय करना होगा कि वर्ग-संस्कृति की शृंखलाओं को वे तोड़ेंगे अथवा नहीं; उन्हें फासिज़्म और समाजवाद में अपना लक्ष्य तय करना होगा। बिना किसी फ़िलॉसफी के पथभ्रष्ट होने की सम्भावना रहेगी, जैसा हम जापानी कवि योन नागुची अथवा इटालियन कवि डैनन्जियो के बारे में देखते हैं। इसी प्रकार 'नवीन', 'कुंकुम' आदि की भूमिका में, 'दिनकर' प्रगतिशीलता पर अपने वक्तव्य में, और भगवती बाबू अपनी कविता '१६४०' में पथभ्रष्ट हो चुके हैं। उनकी भावनाएँ प्रगतिशील हैं, किन्तु उनके दिमाग़ अभी तक वर्ग-संस्कृति की शृंखलाओं से सर्वथा मुक्त नहीं हुए।

पन्तजी अपने ठोस अध्ययन के कारण हिंदी कवियों में सबसे सही वस्तु-विवेचन करते थे। 'युगवाणी' का रूखापन पीछे छोड़कर 'ग्राम्या' में आपकी भाषा में नई तरलता आई। 'ग्राम्या' में कवि ने नई आँखों से

भारतीय गाँव को देखा है। कवि ग्राम-युवती को लक्ष्य करके कहता है :

'उन्मद यौवन से उभर
घटा-सी नव असाढ़ की सुन्दर,
अति श्याम वरण,
श्लथ, मंद चरण,
इठलाती आती ग्राम-युवति
वह गजपति
सर्प डगर पर !'

किन्तु सामाजिक शोषण दो दिन में उसका रूप नष्ट कर देता है :

'रे दो दिन का
उसका यौवन !
सपना छिन का
रहता न स्मरण !
दुःखों से पिस,
दुर्दिन में घिस,
जर्जर हो जाता उसका तन !
ढह जाता असमय यौवन-धन !
बह जाता तट का तिनका
जो लहरों से हँस-खेला कुछ क्षण !'

इस असह्य जीवन से मुक्ति के द्वार खुल रहे हैं :

'जाति वर्ण की, श्रेणि वर्ग की
तोड़ भित्तियाँ दुर्धर
युग-युग के बंदीगृह से
मानवता निकली बाहर'

गाँव के अनुरूप ही कवि की भाषा ने आज बाना पहना है। पन्तजी की बदलती विकासवान प्रतिभा का यह एक इशारा है :

'उजरी उसके सिवा किसे कब
पास दुहाने आने देती
अह, आँखों में नाचा करती
उजड़ गई जो सुख की खेती !
बिना दवा-दर्पन के गृहिनी
स्वरग चली,—आँखें आतीं भर,
देख-रेख के बिना दुधमुँही
बिटिया दो दिन बाद गई मर !'

आगे,

'खैर, पैर की जूती, जोरू
न सही एक, दूसरी आती,
पर जवान लड़के की सुध कर
साँप लोटते, फटती छाती ।'

'ग्राम्या' की एक कविता 'ग्राम-देवता' विशेष महत्त्व रखती है । इस कविता में भारतीय संस्कृति का हमें सिंहावलोकन मिलता है, युग-युग की शोषण-पीड़ा और अब त्राण की आशा :

'राम राम'
हे ग्राम देव, लो हृदय थाम,
अब जन-स्वातंत्र्य युद्ध की जग में धूमधाम ।
उद्यत जनगण युग क्रान्ति के लिए बाँध लाम,
तुम रूढ़ि-रीति की खा अफ़ीम लो चिर विराम !'

हिन्दी कविता के मंच पर एक और प्रभावशाली व्यक्तित्व है जिसके वर्णन बिना हिन्दी कविता पर कोई भी निबन्ध अपूर्ण रहेगा । वह व्यक्तित्व है, यथा नाम तथा गुण 'निराला' । पन्त के शब्दों में 'अनामिका' के कवि ने पर्वत-कारा तोड़कर कविता-धारा को मुक्त किया है, किन्तु साथ ही अपने व्यक्तिवाद के कारण 'निराला' सदा 'फ्री लान्स' रहेंगे और

'निरालावाद' के अतिरिक्त और किसी 'वाद' की सार्थकता न मानेंगे। 'निराला' हिन्दी कविता में एक विप्लवकारिणी शक्ति रहे हैं; रूढ़िवाद के आप घोर शत्रु हैं। हिन्दी के इतिहास में आपका नाम आदर के साथ सदैव लिया जायगा।

इस प्रकार हिंदी कविता की शक्तियों का बँटवारा हम सहज ही समझ सकते हैं। संस्कृति में संघर्ष के चिह्न प्रकट होने लगे हैं। यद्यपि सतह पर अभी तक शान्ति है, तल में संघर्ष जारी है। इन्हीं शक्तियों के इर्द-गिर्द हम आज हिन्दी के लेखकों को पायँगे।

उपन्यास

१

कहानी पूर्व के लिए बहुत पुरानी चीज़ है, किन्तु उपन्यास अपेक्षाकृत नया है। यह भी हम नहीं कह सकते कि हिंदी-उपन्यास का जन्म पश्चिम के सम्पर्क से हुआ। इस देश में 'बैताल पचीसी' और 'तोता-मैना' आदि लम्बे क़िस्से बहुत पहले से चले आ रहे हैं। पद्य में लम्बी कहानी की परम्परा चली आई है। हिंदी के पहले लोकप्रिय उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' का जन्म फ़ारसी के प्रभाव से हुआ। इस ढंग के उपन्यासों की हिंदी में कुछ समय तक बाढ़-सी आई। हिंदी-उपन्यास के दूसरे युग में जासूसी उपन्यासों की भरमार रही। तीसरे युग में सामाजिक उपन्यास फले-फूले और हिंदी-साहित्य ने लम्बे-लम्बे डग भरे। हिंदी-उपन्यास के इस वर्तमान रूप पर अवश्य अंग्रेजी की गहरी छाप है।

तिलस्मी और जासूसी उपन्यास साहित्य की कोई निधि न हो सके। वे केवल समय काटने और मनोरंजन की सामग्री थे। जीवन से कोई उनका सम्पर्क न था। चरित्र-चित्रण उनमें बहुत स्थूल होता था। कथानक

का गुण उनमें अवश्य रहता था। जिस साहित्य की जड़ें पृथ्वी में नहीं, उसका जीवन भी क्षणभंगुर होता है।

हिंन्दी में स्वर्गीय प्रेमचंद से पहले भी सामाजिक उपन्यास लिखे गये थे। पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने दर्जनों उपन्यास लिखे होंगे। ये उपन्यास अपेक्षाकृत जीवन के अधिक निकट थे, किंतु चरित्र-चित्रण की इनमें जटिलता न थी। हिंदी उपन्यास के इस शैशव-काल में अन्य भाषाओं से अनुवाद भी ख़ूब हुए। बङ्किम बाबू की 'देवी चौधरानी' अथवा श्री हरीनारायन आपटे की 'तालीकोटा की लड़ाई' ख़ूब पढ़े गये। अंग्रेज़ी और फ्रेंच उपन्यासों के अनुवाद भी हुए।

'सेवा-सदन' का प्रकाशन हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक स्मरणीय घटना रहेगी। यह हिन्दी का प्रथम अमर उपन्यास था। 'सेवा-सदन' नगर-जीवन का विहंगम दृश्य है। अपनी युवावस्था में प्रेमचन्दजी ने बनारस की सड़कों की भी काफी धूल छानी होगी। 'सेवा-सदन' में मध्य-वर्ग के हिन्दू परिवार का भीषण चित्र है। यह उपन्यास उस काल का लिखा है जब स्वर्गीय प्रेमचन्द समाज के रोगों की दवा जगत् से दूर कोई एकाकी आश्रम समझते थे। 'सेवा-सदन' में मनुष्य-स्वभाव की अच्छी सूझ है। यह हिन्दी-उपन्यास में एकदम नई बात थी। कथानक का विकास पात्रों की आन्तरिक प्रेरणा से हुआ है, बाहर से नहीं। 'सेवा-सदन' विदेशी-साहित्य से चाहे प्रभावित हुआ हो, किन्तु इसके चित्र भारतीय चित्र हैं।

'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्दजी भारतीय गाँव की ओर मुड़े और राष्ट्रीय भावनाओं में भी रँग गये। अब हम उनको ग्राम-जगत् के कलाकार के रूप में ही अधिक पहचानते हैं। भारतीय किसान का जीवन उनकी कृति में मानो सहस्र जिह्वाओं से बोल उठा है। पुराने ज़मींदार घरानों के द्वेष, फूट, दिवालियापन का भी आपने अच्छा नक़शा खींचा। साथ ही इस दारुण व्यवस्था से मुक्ति पाने की दूर कुछ झिलमिल आशा देखी। इस

विचारधारा के अनुसार कोई उदार धनिक 'प्रेमाश्रम' बसाकर हमको जीवन की इस व्यथा से उबार लेगा।

'रंगभूमि' में प्रेमचन्द समस्त जीवन को अपना क्षेत्र मानकर उठे। संसार की 'रंगभूमि' का उन्होंने एक व्यापक विशाल चित्र खींचने का प्रयत्न किया। 'रंगभूमि' में कथानक की जटिलता पर प्रेमचन्द ने पूर्ण अधिकार दिखाया। कुछ अमर पात्रों की भी इस उपन्यास में सृष्टि हुई। सूरदास, विनय, सोफ़िया आदि। कहते हैं, सूरदास का मॉडल प्रेमचन्द को अपने ही गाँव से मिला था। 'रंगभूमि' की विशेषता चित्रपट की विशालता थी। इस उपन्यास में कलाकार ने भारतीय जीवन के प्रत्येक पहलू को छूने का प्रयत्न किया—ग्राम, नगर, समाज के विभिन्न वर्ग और श्रेणी, हिन्दू, ईसाई, मुसलमान आदि।

'कायाकल्प' में प्रेमचन्द की कला ने एक चिन्ताजनक रुख़ पलटा। इस उपन्यास में बहुत-सी बातें मनुष्य की सहज बुद्धि से परे थीं। हिन्दी के भाग्य से प्रेमचन्दजी इस दिशा में और आगे नहीं गये और पार्थिव जगत् की वास्तविकता की ओर फिर लौट आये।

इस बीच में 'प्रतिज्ञा', 'वरदान', 'निर्मला' आदि आपके उपन्यास निकलते रहे जिनसे किसी और कलाकार का नाम हो सकता था, किन्तु आपकी कला के ये मध्यवर्ती गिरि-शृंग हैं।

'ग़बन' के प्रकाशन से यह आशंका नष्ट हो गई कि प्रेमचन्द उपन्यासकार अपना उच्चतम कार्य कर चुके। 'ग़बन' ऊँची श्रेणी का उपन्यास था। इस बार फिर प्रेमचन्द ने हमें भारतीय नागरिक समाज का नग्न और वीभत्स चित्र दिखलाया। यह उपन्यास भारतीय जन-समाज को क्रान्ति की चुनौती है। 'सेवासदन' और 'ग़बन' में प्रेमचन्द ने यथार्थवादी चित्र खींचे हैं। इसी कोटि में हम 'कर्मभूमि' को भी रख सकते हैं।

'गोदान' लिखते समय प्रेमचन्द अपनी शक्तियों पर पूर्ण रूप से अधिकारी थे। 'गोदान' आपका सबसे शक्तिपूर्ण उपन्यास है। आपकी भाव

मँजकर काव्यपूर्ण हो गई है। आपकी टेकनीक प्रौढ़ है। ग्राम्य-जीवन के प्रति अपका आदर्शवाद भी कुछ ढल चुका है। होरी भारतीय किसान की शक्ति का प्रतिनिधि है। यही शक्ति भविष्य का अवलम्बन है, प्रेमशंकर की उदारता नहीं।

'गोदान' चिरकाल तक हिन्दी उपन्यास का जय-चिह्न रहेगा। कथा की धारा यहाँ अविरल बही है। अनेक पात्र जीवन की झाँकी देते हुए हमारे नेत्रों के सामने से गुज़र जाते हैं। इनको हम सदैव ही याद रक्खेंगे और जीवन को इनके माप-दंड से नापेंगे। भाषा में इस सन्ध्या-काल में कुछ अजब सुनहलानप आ गया है। हम सोचते हैं, यह जो जीवन-यात्रा का थका पंछी विश्राम की आशा से अपने नीड़ की ओर आ रहा था, उसके परों में अब भी शक्ति और वेग थे; अभी वह आकाश में ऊँची उड़ान लेने की क्षमता रखता था।

प्रेमचन्द में कथाकार के स्वाभाविक गुण थे। वे अच्छे कथानक जानते थे। जीवन के पात्रों को वे पहचानते थे। दिमाग़ की सब क्रिया जैसे किसी काँच के केस के नीचे वे देख रहे हों। आपके पात्र जीवन में हमारे दुःख-सुख के साथी बन गये हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों के बाद हिन्दी-उपन्यास गर्वोन्नत अन्य भाषाओं की होड़ कर सकता है।

प्रेमचंद ने मानो उपन्यास का बाँध खोल दिया। अब हिंदी में निरंतर उपन्यास निकल रहे हैं, किंतु युवक कलाकारों में हमें ऐसा कोई नहीं दीख रहा, जो रीते आसन पर आपका स्थान ले।

'प्रसाद' जी ने अपने जीवन-काल में तीन उपन्यास लिखे: 'कंकाल' और 'तितली', 'इरावती' अपूर्ण है। इनका हिंदी-उपन्यास की गति विधि पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। 'कंकाल' की भाषा सुन्दर थी, किन्तु क्लिष्ट थी। साधारण पात्रों की बात-चीत के लिए यह अनुपयुक्त थी। कथा-प्रवाह और पात्रों में भी कुछ प्रौढ़ कला न थी। 'तितली' का स्थान हिन्दी के उपन्यासों में ऊँचा होगा। इस कथा की भित्ति यथार्थ जीवन पर थी।

भारतीय समाज की वेदना और दुर्बलताएँ यहाँ सजीव रूप में मिलती हैं। 'तितली' का चरित्र-चित्रण भी उच्च-कोटि का था। प्रेमचन्द की कला का 'तितली' पर स्पष्ट प्रभाव था। 'इरावती' ऐतिहासिक उपन्यास है।

'तितली' पढ़कर बरबस ही यह विचार मन में उठता है कि यदि 'प्रसाद' कुछ दिन और जीवित रहते, तो उपन्यास को भी नाटक की भाँति समृद्ध कर जाते।

जैनेन्द्र हिन्दी के बढ़ते हुए कलाकारों में हैं। आप अनेक उपन्यास लिख चुके हैं। 'परख', 'सुनीता', 'त्याग-पत्र', 'कल्याणी' आदि।

'परख' ने पहले हिन्दी-संसार की दृष्टि आपकी ओर फेरी। इस उपन्यास के वेश-विन्यास में आकर्षक सादगी थी। इसकी नायिका 'कट्टो' का हिन्दी में नाम हो गया है, और भी चरित्र-चित्रण सुन्दर हुआ है। 'परख' में ध्यान आकर्षित करने का गुण था, चरित्र-चित्रण की सचाई, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, भाषा की सादगी।

'सुनीता' में ये मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ अधिक उलझ गईं, जिसके कारण 'सुनीता' और 'हरिप्रसन्न' दो पात्रों का चित्रण गूढ़ और रहस्यमय हो गया। हमारे मन में यह भावना होती है कि लेखक कुछ गहरी बात कहना चाहता है, किन्तु उसे कह नहीं पाया।

'त्याग-पत्र' में हिन्दू-समाज की अंतर्वेदना निहित है। जैनेन्द्रजी का सबसे अधिक शक्तिपूर्ण उपन्यास यही है। एक भारी कठिनता और अवसाद इस कथा में है—भारतीय नारी का विषम और दारुण जीवन जो पल-पल पर उसके अभिमान को कुचलना चाहता है। इस कथाभाग के पीछे जैसे युग-युग की पीड़ा घनीभूत है, किन्तु आँसुओं में बहकर नहीं निकल पाती। समाज के विचारालय में 'त्याग-पत्र' नारी का कठिन आरोप है।

'कल्याणी' में जैनेन्द्र ने भारतीय नारी का एक नया चित्र बनाया, किन्तु इस उपन्यास में आपकी भाव-धारा अस्पष्ट है।

जैनेन्द्र पिछले वर्षों में आध्यात्मिकता की ओर अधिक जा रहे थे। आशा है, कला का आँचल छोड़ आप केवल दार्शनिक ही न रह जायँगे। 'सुखदा' और 'विवर्त्त' लिखकर आप फिर एक बार अपने क्षेत्र को वापस लौटे हैं।

उच्च श्रेणी के अन्य कलाकार भी उपन्यास के क्षेत्र में हैं : श्री 'निराला', भगवतीचरण वर्मा और सियारामशरण गुप्त। इनकी ओर आलोचकों का ध्यान कुछ कम आकर्षित हुआ है, क्योंकि इनका कार्य उपन्यास के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं। 'निराला' जी अब तक 'अप्सरा', 'अल्का', 'निरुपमा', बिल्लेसुर बकरिहा', 'चोटी की पकड़' आदि उपन्यास लिख चुके हैं। 'चमेली', अप्रकाशित उपन्यास का एक परिच्छेद फरवरी के 'रूपाभ' में निकला था। आपके चरित्र जटिल होते हैं; आपकी भाषा में रस रहता है; आपके कथानक में काफ़ी आकर्षण रहता है। किन्तु आपके कथानक में घटना-बाहुल्य रहता है; और आपके चित्रों में कोई केन्द्रित व्यवस्था नहीं रहती। आपकी कथा डाँवाडोल लक्ष्यहीन-सी मानो भटकती है। 'चमेली' का एक परिच्छेद जीवन की उग्रतर आलोचना है। ग्राम्य-जगत् के इस चित्र में काफ़ी शक्ति है :

'उतरता वैशाख। खलिहान में गेहूँ, जौ, चना, सरसों, मटर और अरहर की रासें लगी हुई हैं। गाँव के लोग मड़नी कर रहे हैं। कोई-कोई किसान, चमार-चमारिन की मदद से, माड़ी हुई रास ओसा रहे हैं। धीमे-धीमे पछियाव चल रहा है। शाम पाँच का वक्त। सूरज इस दुनिया से मुँह फेरने को है....।'

'बिल्लेसुर बकरिहा' भी ग्राम-जीवन की कठोर आलोचना है।

'चोटी की पकड़' अतीत का एक चित्र है।

श्री० भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' शक्तिपूर्ण उपन्यास था। प्राचीन भारत के सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन का वह सजीव चित्र था। इसमें कुछ बहुत ऊँचे उठे चरित्र थे। मनुष्य जीवन से विलग

हो मुक्ति नहीं पा सकता, यह इस कथा का इङ्गित है। अनातोले फ्रांस के 'थायस' (Thais) का भी यही कथाप्रवाह है, किन्तु 'चित्रलेखा' का वातावरण इतिहास और उपनिषदों से निर्मित एकदम भारतीय है।

'तीन वर्ष' में वर्माजी आधुनिक समाज की ओर झुके। 'तीन वर्ष' जीवन के कटु अनुभव पर निर्भर समाज की उग्र आलोचना है। 'तीन वर्ष' जीवन का एक छोटा-सा कटु टुकड़ा है। इसके पात्र जीवन की जूठन हैं : मद्यप, वेश्याएँ, वेश्यागामी। किन्तु इनमें शिक्षित समुदाय से अधिक सच्चरित्रता और उदारता है।

इसके बाद वर्माजी ने एक नया उपन्यास "टेढ़े-मेढ़े रास्ते" लिखा, जो जीवन का बृहत् विस्तृत चित्र है, किन्तु आपकी दृष्टि असंयत और पूर्व-ग्रहों से आक्रान्त है।

श्री सियारामशरण गुप्त में उपन्यासकार के स्वाभाविक गुण हैं। आपकी कथा में सच्ची भारतीयता है; आपके दृष्टिकोण में उदारता है। यदि वर्माजी मन उद्विग्न कर देते हैं, तो आप हमें शान्ति पहुँचाते हैं। आपकी कथा-शैली बहुत मँजी और प्रौढ़ है। आपकी उपमाएँ हमें विशेष सुंदर लगीं।

हिंदी में अनेक उपन्यासकारों का नाम हुआ है। श्रीचतुरसेन शास्त्री, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री वृन्दावन लाल वर्मा, श्रीमती उषादेवी मित्रा, श्रीइलाचन्द्र जोशी, 'अज्ञेय', यशपाल और 'अश्क'। अन्य नवयुवक लेखक भी हिंदी-उपन्यास का भण्डार भर रहे हैं।

पश्चिम में उपन्यास-कला में बड़े-बड़े परिवर्त्तन हो रहे हैं, जिनका प्रभाव हिन्दी पर भी दृष्टिगोचर होता है। संतोष की बात यह है कि हिंदी-उपन्यास भारतीय-जीवन का ही प्रतिबिम्ब है। स्वर्गीय प्रेमचन्द ने ग्रामीणों और किसानों का जीवन अंकित किया था, उनके परवर्त्ती उपन्यास ने शिक्षित मध्य-वर्ग का गार्हस्थ्य जीवन अपनाया।

हाल में ही श्री 'अज्ञेय' ने 'शेखर' नाम का एक विस्तृत उपन्यास लिखा है। 'टेकनीक' के यहाँ कुछ नए प्रयोग हैं। 'शेखर' एक ही व्यक्ति

के जीवन का चित्र है। 'शेखर' के पहले भाग में कथा का प्रभाव बहुत धीमा है, किन्तु प्रत्येक अंग सुघड़ और शिल्पकला में ढला है। उपन्यास अन्तर्मुखी है। और इसकी गठन अंतर्जगत् के चित्रों की पंक्ति मात्र है।

यशपाल ने 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' और 'दिव्या' में उत्तरोत्तर प्रौढ़ता दिखाई है। आपका जीवन-दर्शन, शिल्प और मानव स्वभाव की सूझ आपके विशेष गुण हैं।

हिंदी उपन्यास का इतिहास अभी अपेक्षाकृत नया है। किन्तु इस थोड़े समय में ही उसने बहुत उन्नति की है। इसका अधिकतर श्रेय केवल एक कलाकार को है। हमें हर्ष है कि उस कलाकार के निधन से हताश न होकर हिन्दी उपन्यास तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने सफल सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। श्री राहुल और श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास की दिशा में अच्छा प्रयास किया है। मध्य युग के काल-खंड को इन कथाओं ने अपनाया है। ऐहितासिक उपन्यास में स्वर्गीय राखाल बाबू के 'करुणा' और 'शशांक' प्राचीन भारत के बड़े सुन्दर और सजीव चित्र हैं।

श्रीमती उषादेवी मित्रा के अनेक उपन्यास निकल चुके हैं। आपकी अलंकार-बोझिल भाषा के अतिरिक्त आपका विशेष गुण स्त्री-स्वभाव की सूझ है। आपने उच्च श्रेणी की पात्राओं का अपनी कथाओं में चित्रण किया है। इस गुण के कारण उपन्यास-क्षेत्र में आपका विशेष स्वागत होना चाहिए।

श्री इलाचंद्र जोशी मनोविश्लेषण से विशेष प्रभावित हुए हैं। आपके उपन्यासों में प्रमुख 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी', और 'प्रेत और छाया' हैं। हाल में 'सुबह के भूले' आदि स्वस्थ सामाजिक उपन्यास जोशी जी ने लिखे हैं।

२

हिंदी उपन्यास अपने जीवन का एक सुदीर्घ काल पार कर इतिहास की सामग्री बन चुका है। आगे चलकर उसकी रूप-रेखा क्या होगी, यह

प्रश्न मन में उठता है। वर्तमान के बल पर ही हम भविष्य का चिन्तन कर सकते हैं।

आज हमें उपन्यास की भूमि में प्रेमचन्द की समता करनेवाला कोई उन्नत कलाकर नहीं दीख रहा। किन्तु प्रेमचन्द अपने युग में लगभग एकाकी थे और आज मानो बाँध तोड़कर उपन्यास की धारा बह रही है। कल के उपन्यासकारों में हम प्रेमचन्द, 'प्रसाद', 'सुदर्शन', कौशिक, 'निराला' आदि को गिन सकते हैं। आज की शक्तियाँ जो कल और भी प्रखर हो सकती हैं, कुछ तो प्रकाश में हैं: जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, 'अज्ञेय', यशपाल, 'अश्क'; जो भविष्य के गर्भ में छिपी हैं उनके बारे में क्या कहा जाय? इतना तो है ही कि उपन्यास लेखन संक्रामक रोग है। अनेक वाणी जो आज मौन हैं, कल मुखरित हो उठेंगी।

हिन्दी उपन्यास का इतिहास लगभग प्रेमचन्द की कला का इतिहास है। आधुनिक साहित्य के शैशव काल में अवतरित होकर प्रेमचन्द ने कल्पनातीत कारीगरी दिखाई। उनकी टेकनीक तो प्रौढ़ थी ही; पाश्चात्य साहित्य का और उपन्यास-कला का उन्होंने अच्छा अध्ययन और मनन किया था। सामाजिक शक्तियों के संघर्ष की भी उन्हें अद्भुत सूझ थी। उनके उपन्यास-संसार में भारत की वर्तमान अवस्था सजीव चित्र की भाँति हमारे सामने घूम जाती है। भारत की प्रकृति-भूमि : आम-महुए का साज; फाग और डफ; कोयल की कूक; ग्राम्य-श्री। समाज के सभी वर्ग : महाराजे, रईसज़ादे, ज़मींदार, बनिए, सूदखोर, सरकारी अहल्कार, कारिन्दे, छोटे अफ़सर; सबसे बढ़कर भारतीय किसान, 'होरी' शोषित, आहत, दयनीय। इस प्रकार सुगढ़ और प्राण-सम्पन्न एक विशाल दुनिया में हम जा पहुँचते हैं।

प्रेमचन्द की कला में हमें भारतीय जीवन की अनेक रूपता मिली। आज के कलाकार जीवन का एक सीमित भाग अपनाते हैं, जो उनका अपना संकुचित दायरा है। यही उनकी विजय है और पराभव भी।

आज हिन्दी उपन्यास की धारा अनेक शाखाओं में फूटकर बहुमुखी

हो रही है। जैनेन्द्र हिन्दू नारी के अनेक चित्र बना चुके हैं : कट्टो, सुनीता, मृणाल, कल्याणी, सुखदा। कुछ पुरुष भी हैं। किन्तु जकड़ी समाज के यह सभी कुण्ठित प्राणी एक असहाय-सा भाव मुख पर लेकर आते हैं, मानो किसी अज्ञात कारणवश उनकी गति अवरुद्ध है, और खुल नहीं पाती। सियारामशरणजी की कला घी के दिए की लौ के सदृश निर्मल है, और उनके कला-जग में आहत को शांति मिलती है। किन्तु जो क्षुब्ध सागर हमारे चतुर्दिक् लहरें मार रहा है, उसका इस कला से कुछ सम्बन्ध नहीं है। मरुभूमि में 'ओसिस' के समान सुखप्रद यह कल्पना मृगतृष्णा तो नहीं है ? श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी टेकनीशियन हैं। वह जीवन का कोई टुकड़ा काटकर हमारे सामने रख लेते हैं, और कुशलतापूर्वक, कारीगरी से। श्रीमती मित्रा रोमैण्टिक हैं। जीवन आपके लिए एक आकर्षक मेला है, जिसका आप रसवन्ती भाषा में वर्णन करती हैं। 'अज्ञेय' अभी तक एकही व्यक्ति का चित्रण कर सके हैं।

इन कलाकारों से भविष्य क्या आशा रक्खे ? जैनेन्द्र की कला का विकास हो रहा है। हिन्दू गृहस्थ के घर का परदा उठाकर आपने अन्दर झाँकने का साहस किया है और एक करुण, मर्म पर आघात करनेवाला दृश्य हमें दिखाया है। क्या जैनेन्द्रजी की कला का बाह्यरूप हल्का हो रहा है ? आपकी कथा के पात्र उत्तरोत्तर कम हो रहे हैं, 'कल्याणी' में केवल एक ही पात्री है। दूसरी बात, जैनेन्द्रजी की विचार-परिधि फैलेगी या वे अपनी बात दुहराने लगेंगे ? दूसरे शब्दों में क्या उपन्यास आपके लिए 'प्रश्नोत्तर' का ब्याज रूप तो न हो जायागा ? 'कल्याणी' में इसकी एक चिन्तनीय झलक है।

श्री भगवतीचरण वर्मा से हमें बहुत कुछ आशा है। आप हिन्दी में एक गतिशील शक्ति हैं, आपकी नवीन रचनाओं की प्रगति विकासमान है और आपके व्यक्तित्व में विप्लव-भावना के साथ-साथ ग्रहण करने की क्षमता भी है। वर्माजी अपने वर्ग के बाहर कुछ नहीं जानते, यह उनके

वर्ग का ही बन्धन है। यदि आप अपने पूर्वग्रह छोड़ सकते, तो आपका विकास अधिक स्वस्थ होता।

यशपाल हिन्दी के विकासोन्मुख कलाकारों में प्रमुख हैं। निस्सन्देह ही आपकी रचनाएँ हिन्दी उपन्यास का भविष्य बनाएँगी। यही हम जोशीजी के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं।

कला के विकास में व्यक्ति-विशेष सहायक हो सकते हैं, किन्तु उनसे बढ़कर कला का स्वतन्त्र जीवन अपनी गति पर आबद्ध चला ही जाता है। हम देखते हैं कि कुछ कलाकारों ने हिन्दी उपन्यास को रूप दिया है; किन्तु उपन्यास की अपनी सजीवता ने भी उन्हें बनाया है। हम कह सकते हैं कि निकट भविष्य में हिन्दी में खूब उपन्यास लिखे जायँगे, उनकी रूप-रेखा जो भी कुछ हो।

कला का रूप समाज के अनुकूल परिवर्त्तनशील और वर्द्धमान है। कला समाज से अलग कोरी कल्पना के भवन में नहीं जी सकती। आज संसार में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं और भारतीय समाज में बेहद उथल-पुथल है। इस संकट-काल में संस्कृति का रूप भी अस्थिर और डावाँडोल होगा।

संकट-काल में कला के स्वरूप में भी उथल-पुथल ज़रूरी है। एक मार्ग है आदर्शवाद जो श्री सियारामशरण ने अपनाया है, अथवा 'रोमैण्टिसिज़्म' जो श्रीमती उषादेवी मित्रा की कला ने ग्रहण किया है। या तो कलाकार अतीत की ओर मुड़ जाता है, जहाँ उसके आहत अभिमान को 'मधु-मरहम' मिलता है, अथवा कल्पना के लोक में निकल भागता है जहाँ 'स्वर्ग-परियाँ' विहार करती हैं। ऐसी कला को हम गति-रुद्ध कहते हैं, क्योंकि जीवन की चुनौती से वह बचती है। संकट-काल में कला की बाह्य रूप-रेखा में अनेक अन्वेषण होते हैं। यूरोप में काव्य, संगीत, उपन्यास, चित्रकला, स्थापत्य सभी के अङ्ग बदल रहे हैं। 'अज्ञेय' टेकनीक के आविष्कारों में लिप्त हैं। 'त्रिपथगा' में मानो 'कुछ भी नहीं' को वह नये-नये रूप में रखकर देख

रहे हैं। 'विपथगा' की अनेक कहानियाँ सुगढ़ कला का प्रमाण हैं, किन्तु कुछ विदेशी जीवन को स्पर्श करती हैं, कुछ 'कड़ियों' की भाँति टेकनीक के अनुसन्धान में मग्न हैं, और मर्म को नहीं छू पातीं। इस प्रकार बन्दी कलाकार का जीवन कुण्ठित रह जाता है, और कुछ कहकर वह अपनी आत्मा का बोझ हल्का नहीं कर पाता। 'शेखर' में भी हम देखते हैं कि मन के भारी बोझ के कारण कथा की गति अवरुद्ध है। 'अज्ञेय' की कला इस बात का प्रमाण है कि प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार संकट-काल में अधिक नहीं खुल पाता।

समाज और साहित्य के इस अन्तरङ्ग सम्बन्ध को समझ हम उपन्यास की प्रगति भी समझ सकते हैं। जो कलाकार समाज की बेड़ियाँ तोड़ने को अधीर हैं, वे आज भी प्रतिभाशाली साहित्य की रचना कर सकते हैं। उनके प्राण जितने मुक्त होंगे, उनकी रचना में उतनी ही गति होगी। समाज़ का बन्धन टूटने पर कला का विकास कल्पनातीत होगा। उन्नत समाज की संस्कृति में अनन्य गति भर जाती है, इसका साक्षी इतिहास है। जो हमारे 'मिल्टन' आज मूक हैं, उनकी वाणी भविष्य में मुखरित हो उठेगी। व्यक्ति-विवेचन छोड़ हम कह सकते हैं कि हिन्दी की उपन्यास-कला में निकट भविष्य में ही नये जीवन की उमंग भर जायगी और पिंजर-मुक्त पक्षी के समान पंख खोलकर वह उड़ सकेगी। अभी तो 'पिंजरे की उड़ान' है।

कहानी

प्रेमचन्द, कौशिक और सुदर्शन की कला में जिस गम्भीर और गहरी धारा में हिन्दी-कहानी बही थी, उसे छोड़ अब वह नई-नई शाखाओं में फूटकर 'विपथगा'-सी हो रही है। आधुनिक हिन्दी कहानी में प्रेमचन्द ने

प्राण फूँके, 'प्रसाद', कौशिक और सुदर्शन ने उसे विकसित किया; अब वह अपने विकास के नये पथ खोज रही है।

हमारे नये गल्पकारों में जैनेन्द्रजी का नाम अग्रगण्य है। आप अनेक सुन्दर कहानी लिख चुके हैं। आपके कई संग्रह भी निकल चुके हैं। आपकी 'खेल' नामक कहानी से प्रसन्न होकर कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने कहा था कि 'हिन्दी में हमको रवि बाबू और शरत् बाबू अब मिले और एक साथ मिले!'

जीवन के बहुत उलझे हुए तानों-बानों से जैनेन्द्रजी बचते हैं। आपके उपन्यासों में भी थोड़े-से ही पात्र होते हैं। जीवन की झाँकी मात्र आपको रुचिकर है। उसी झाँकी द्वारा आप अपने गहनतम भावों को प्रकट कर देते हैं। गल्पकार का यही गुण होना चाहिए।

जैनेन्द्रजी ने अनेक ढंग की कहानियाँ लिखी हैं। 'मास्टर साहब' कुछ बंगाली वातावरण की; 'एक रात' कुछ रूसी पुट लिये; प्राचीन राजकुमार और शिल्पकारों की जीवन-गुत्थियाँ; रेल-यात्रा की रोचक घटनाएँ। आप जीवन के सभी क्षेत्र अपनाते हैं। टेकनीक आपकी नवीन है, किन्तु आपकी कला की आत्मा भारतीय है। उन्नीसवीं शताब्दी में विदेशी कलाकारों का ऐसा नियम था कि पेंसिल और नोटबुक लेकर वे घर से बाहर निकल पड़ते थे। जैनेन्द्रजी भी अपनी पेंसिल और नोट-बुक घर पर कभी नहीं भूलते।

जैनेन्द्रजी का कथानक सीधा और सुलझा हुआ होता है। मनोवैज्ञानिक गुत्थियों में ही कभी-कभी आप उलझ जाते हैं। जीवन का कोई एक अंग वह अपनाते हैं। जन्म-मरण की यहाँ समस्या नहीं। चरित्र-चित्रण ही लेखक का ध्येय है। इन कहानियों का आदि अन्त कुछ नहीं। 'फोटोग्राफी' और 'खेल' इसी शैली की कहानी हैं। पश्चिम में वह शैली 'चेकॉफ़' के साथ लोकप्रिय हुई थी।

इधर दो-एक वर्ष से जैनेन्द्रजी की कला ने जो रूप लिया है, उससे चिन्ता होती है। अधिकाधिक आप जीवन की वास्तविकता और कटुता से

बचकर चल रहे हैं। आपकी लम्बी कहानी 'त्याग-पत्र' पढ़कर हमको भारी सन्तोष हुआ। ऐसी व्यथा, कठिनता और स्वाभाविकता उच्च-कोटि के साहित्य में ही मिल सकती है।

श्रीचन्द्रगुप्त विद्यालंकार उच्च-श्रेणी के आलोचक हैं। हिन्दी कहानी-साहित्य पर आपका निबन्ध अभूतपूर्व रूप से निर्भीक और गम्भीर था। आपने अनेक रोचक कहानी लिखी हैं। 'ताँगेवाला' नाम की कहानी हमको विशेष अच्छी लगी; आपने गल्प-कला के सम्बन्ध में शायद बहुत कुछ सोचा है। आपकी 'क ख ग', 'एक सप्ताह', 'चौबीस घण्टे' आदि कहानियों से यह स्पष्ट है। 'क ख ग' जीवन के तीन विभिन्न चित्र हैं। तीनों में रक्तपात और मृत्यु है। रेल, स्टेशनों और ग्राम्यजीवन का स्वाभाविक वातावरण है। टेकनीक उत्कृष्ट है। 'क ख ग' यह तीनों चित्र मिलकर जीवन का व्यापक चित्र बन जाते हैं।

'एक सप्ताह' पत्रों द्वारा वर्णित कहानी है। पहाड़ के ग्रीष्म जीवन का यहाँ रोचक परिचय मिलता है। कथानक नहीं के बराबर है। सप्ताह भर में एक युवक प्रेम, निराशा सभी कुछ अनुभव कर वापस लौट आता है।

'चौबीस घण्टे' में भूकम्प द्वारा एक दिन में घटित परिवर्त्तन का हाल है।

समय और काल का कहानी में मूल्य कम होता जा रहा है। जन्म-मरण पर्यन्त मनुष्य-जीवन रोचक नहीं होता। जीवन के कुछ मूल्यवान-क्षण लेकर ही आधुनिक कलाकार उन पर तीव्रतम प्रकाश डालता है।

चन्द्रगुप्तजी कहानी के बाह्य रूप में अधिक लीन रहे हैं। टेकनीक में किये आपके अन्वेषण और अनुसंधान हिन्दी-कहानी की उन्नति में विशेष सहायक होंगे।

'अज्ञेय' जी ने नवीन पाश्चात्य कथा-शैली को अपनाया है। उसकी स्पष्ट छाया 'प्रतिध्वनियाँ' और 'कड़ियाँ' शीर्षक कहानियों में हैं। मनुष्य के मन में अनेक-असम्बद्ध भाव उठते रहते हैं—अनेक चित्र एक साथ बनते,

बिगड़ते हैं। उन्हीं का चित्रण इन कहानियों में हुआ है। 'कड़ियाँ' हिन्दी-साहित्य की निधि होगी। मनुष्य-मात्र की बिखरी भावनाओं को—उसकी आशा, निराशा, हर्ष, उन्माद को—कलाकार ने यहाँ बटोरकर रखा है। बार-बार उसके खींचे शब्द-चित्र हमारे मन में घूम जाते हैं।

'अज्ञेय' जी में काव्य का अंश भी यथेष्ट मात्रा में है। वह आपकी 'अमर-वल्लरी' नाम की कहानी में प्रकट हुआ है। पीपल के पेड़ ने जीवन के अनेक दृश्य देखे हैं। शताब्दियों से वह प्रहरी की भाँति सिर उठाये यहाँ खड़ा है। अमर-वल्लरी उसके कण्ठ की माला बनी हुई है। किन्तु पीपल अब वृद्ध हुआ। उसकी धमनियों में रक्त-संचार धीमा पड़ गया है। जीवन के अनेक दृश्य उसने देखे हैं। नित्य प्रभात और सन्ध्या की मधु-वेला में स्त्री-पुरुष आकर उसके ऊपर पत्र-पुष्प चढ़ा जाते हैं। वरदान की इच्छुक ललनाएँ उसका आलिङ्गन करती हैं, किन्तु वह अशोक की भाँति फूलकर उन्हें उऋण नहीं कर सकता। जीवन के कितने रहस्य उसके हृदय में छिपे पड़े हैं?

यशपाल के कई कहानी-संग्रह अब तक निकल चुके हैं, 'पिंजरे की उड़ान', 'ज्ञानदान', 'अभिशप्त', इन कहानियों में यशपाल उच्च कोटि के शिल्पकार के रूप में प्रकट हुए हैं। 'अभिशप्त' में आपने सामाजिक व्यथा के अनेक मार्मिक चित्र खींचे हैं।

श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा की कहानियों में विद्रोह-भावना और सामाजिक असन्तोष है। नवीन शिक्षा और अविष्कारों के साथ जो युग भारत में आया है, उसके आप प्रतिनिधि हैं। इस नवयुग की हलचल, अशान्ति और उतावलापन आपकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित है। आपके कहानी-संग्रह 'इन्सटॉलमेन्ट' का शीर्षक ही इसका द्योतक है। चाय की प्याली के साथ आपकी प्रत्येक कहानी का आरम्भ होता है। 'कार', सुरापान, अनियन्त्रित प्रेम, 'इन्सटॉलमेन्ट' द्वारा ऋणपरिशोध—यह इस युग की साधारण

बातें हैं। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध की मीमांसा में आप विशेष व्यस्त रहते हैं।

आज हिन्दी-कहानी की प्रगति उमड़ी हुई वर्षा-नदी के समान है। अनेक सुप्रसिद्ध कहानीकारों के नाम मन में उठते हैं। कई वर्षों से श्री कृष्णानन्द गुप्त सुन्दर कहानी लिखते आ रहे हैं। आपकी कहानियाँ सदैव रोचक होती हैं। आपका कथानक स्वाभाविक और चरित्र-चित्रण कुशल होता है। श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी ने अच्छी कहानी लिखी हैं। 'उग्र' ने कुछ वर्षों का मौन तोड़कर फिर लेखनी सँभाली है। पं० विनोद-शंकर व्यास ने भावुकता और श्रीयुत इलाचन्द्रजोशी में कला के प्रति विशेष आकर्षण है।

जो और किसी युग में कहानी नहीं लिखते, वे भी आज कहानी लिख रहे हैं। 'पन्त' अथवा 'निराला' सर्वप्रथम तो कवि हैं। पन्तजी की 'पाँच कहानियाँ' सुन्दर रेखा-चित्र हैं। भाषा प्रांजल और प्रवाहमयी है। इन कहानियों को पढ़ने में गद्य-काव्य का आनन्द आता है। शिक्षित समुदाय के विचार-व्यवहार की पन्तजी को सहज सूझ है। आपकी कला में तितली के पंखों-सी चमक है। हमें दुःख है कि इन कहानियों में भारतीय जीवन की निराशा के अन्तरतम तक पन्तजी नहीं पहुँचे।

इस जागृति-काल में अनेक स्त्री कहानीकार हुई हैं। शिवरानी देवी, कमला चौधरी, उषादेवी मित्रा, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा आदि। शिवरानी देवी प्रेमचन्द के पथ पर चल रही हैं—जो स्वाभाविक है। श्रीमती कमला चौधरी की कहानियों में काव्य-प्रेरणा, सरलता और उल्लास है। गृह-जीवन आपका विशेष क्षेत्र है। स्त्रियों के दुःख आप सहज ही और मार्मिक भाषा में व्यक्त करती हैं। 'साधना का उन्माद' और 'मधुरिमा' में जो स्त्री-हृदय की सूझ है, वह पुरुष लेखकों की परिधि से सर्वथा बाहर है। उषादेवी मित्रा की भाषा में काव्य और लालित्य रहता है। आपकी 'जीवन-सन्ध्या' शीर्षक कहानी हमको अच्छी लगी। श्रीमती होमवती देवी ने 'विशाल

भारत' में कुछ सुन्दर कहानी लिखी हैं। आपकी रचनाओं में 'नारीत्व' सुलभ सुकुमारता और कोमलता रहती है।

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा का कहानी-संग्रह 'आदमखोर' आपको हिन्दी के उन्नत कलाकारों की पंक्ति में अनायास ही पहुँचाता है। आपकी कहानियों में भारतीय नारी के जीवन की व्यथा कूट-कूटकर भरी है।

अनेक उर्दू लेखकों ने भी हिन्दी में लिखने का प्रयत्न किया है। इनमें अहमद अली और सज्जाद ज़हीर के नाम उल्लेखनीय हैं। अहमद अली की कहानी 'हमारी गली' हिन्दी के लिए एक नयी चीज़ थी। गली की दुकानों के, दुकानदारों के, राहगीरों के इसमें सूक्ष्म चित्र हैं। यथार्थवाद का और युरोपीय कहानी की नवीनतम टेकनीक का यह उत्कृष्ट नमूना है। इसकी भाषा भी कहीं-कहीं खूब ऊँची उठी है—विशेषकर अज़ाँ की प्रतिध्वनि के वर्णन में।

प्रेमचन्दजी ने हमारे ग्राम्य और गार्हस्थ्य जीवन पर ज्योति की वर्षा की थी। आपकी अधिकतर कहानियाँ घटना-प्रधान थीं। मनुष्य के हृदय की यहाँ सच्ची और अच्छी परख थी। हिन्दी कहानी कई वर्ष तक आपके दिखाये पथ पर चली। जीवन-प्रेरणा और विकास के नियमों से उत्सुक अब वह नई दिशाओं की ओर उन्मुख हो रही है।

हिन्दू परिवार में और सामाजिक जीवन में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनका प्रतिबिम्ब हमको इन नये कहानीकारों की रचनाओं में मिलता है। हमारे जीवन-पथ में जो नवीन विचारधाराएँ प्रकट हुई हैं, विप्लव और विद्रोह की जो प्रबल भावनाएँ जागृत हुई हैं—उनका यहाँ भविष्य के लिए इतिहास लिखा मिलेगा।

कला की दृष्टि से हिन्दी-कहानी ने अनेक अनुसन्धान किये हैं। मनोविज्ञान और यथार्थवाद की ओर हमारा ध्यान अधिक खिंचा है। कथा-शैली में अनेक परिवर्तन हुए हैं। बहुत-कुछ हमने खो दिया है, किन्तु बहुत-कुछ पाया भी है।

आलोचना

१

साहित्य के शैशव में आलोचना का कोई स्थान नहीं होता। जब साहित्य प्रौढ़ हो जाता है, तभी आलोचना का विकास होता है। पहले काव्य-सृष्टि होती है, फिर काव्यालोचन। कहते हैं, पहले मनुष्य के मुख से कविता निकली थी, फिर गद्य।

हिंदी का साहित्य बहुत पुराना है। किसी न किसी रूप में आलोचना भी हिन्दी साहित्य में रही है। आधुनिक हिन्दी साहित्य प्रसव-काल की पीड़ा भूल एक नये जग को नेत्र खोलकर देख रहा है। आलोचना का क्षेत्र भी अब विस्तृत हो रहा है। सत्साहित्य के लिए अच्छे साहित्य-आदर्श ज़रूरी हैं। उन्हीं के निर्माण से आलोचक अपने साहित्य की भारी सहायता कर सकता है।

आलोचक का कार्य बड़े महत्त्व का है। ऊँचे आसन पर बैठकर दंड और इनाम देनेवाला पदाधीश वह नहीं है। सत्य की खोज में वह अनवरत लीन तपस्वी है। ऑस्कर वाइल्ड ने आलोचक को कलाकार कहा है। अपनी अनुभूति और कल्पना के सहारे वह साहित्य की आत्मा तक पहुँचने का प्रयत्न करता है।

हिंदी आलोचना के तीन स्पष्ट क्रम-विभाग हैं। पहले काल में पुराने आचार्यों के रस और अलंकार संबन्धी नियम मानकर हम चले। दूसरे काल में नई कसौटियों की ओर भी हमारी दृष्टि गई। अब हम नये साहित्य को नये ही माप और बाटों से तोल रहे हैं।

रीतिकाल के काव्य में आलोचना का काफ़ी मिश्रण था। अधिकतर कवि नायक नायिका-भेद अथवा अलंकार और पिंगल समझाने के लिए कविता लिखते थे। इन ग्रन्थों से अलंकार आदि समझना तो कठिन है, किंतु कविता कभी-कभी काफ़ी मीठी हुई है। मालोपमा का कितना अच्छा उदाहरण यह दोहा है :

'घन से, तम से, तार से, अंजन की अनुहार।
अलि से, पावस रैन से, बाला तेरे बार।'

मतिराम का 'ललित ललाम', राजा यशवंतसिंह का 'भाषा-भूषण', पद्माकर का 'पद्माभरण', दास का 'छंदार्णव पिंगल' अथवा 'काव्य-निर्णय' इसी ढंग के काव्य-ग्रन्थ हैं।

हिंदी गद्य के विकास के साथ ही आलोचना भी आगे बढ़ी और काव्य के गुण-दोष-विवेचन का सूत्रपात हुआ। एक बार भद्दे, पीले काग़ज़ पर मोटे, सटे अक्षरों में छपी ग्वाल कवि की भूमिका हमने पढ़ी थी; ब्रजभाषा गद्य का वह आकर्षक नमूना थी। भारतेन्दु ने 'कवि वचन सुधा' और अन्य पत्रों में हिन्दी आलोचना को दृढ़ नींव पर रक्खा। भारतेन्दु रसिक और काव्य-प्रेमी व्यक्ति थे। ब्रजभाषा की फुटकर कविताओं का आपने एक बड़ा संग्रह किया, जो पालग्रेव की ट्रैज़री की तरह पुराने हिन्दी काव्य का अखंड कोष है।

पुरानी परिपाटी के आलोचकों में अग्रगण्य पं० पद्मसिंह शर्मा, ला० भगवानदीन 'दीन', 'रत्नाकर' और पं० कृष्णबिहारी मिश्र हैं। बिहारी पर पं० पद्मसिंह शर्मा का 'संजीवन भाष्य' अनमोल वस्तु है। 'यह खाँड की रोटी जिधर से तोड़ो उधर से ही मीठो है।' आपके गद्य में उर्दू और फ़ारसी की छींटें स्थान-स्थान पर स्वाति-वर्षा-सी करती हैं। हमें खेद है कि 'भाष्य' अधूरा ही रह गया।

बिहारी और केशव के पाठ सुलझाने में लाला भगवानदीन ने भगीरथ प्रयत्न किया। आप बिहारी के विचित्र अर्थ भी निकालते थे। वाद-विवाद में पड़कर आप कड़वी और चुभनेवाली बात भी कह डालते थे।

बिहारी का पाठ सुधारने में 'रत्नाकर' का काम अंग्रेजी आलोचकों की जोड़ का था। 'बिहारी रत्नाकर' के ढंग के शेक्सपियर आदि कवियों पर अंग्रेजी में अनेक ग्रन्थ हैं।

पुरानी कसौटियों पर जिस संयत और सुन्दर ढंग से पं० कृष्णबिहारी

मिश्र ने काव्य-परीक्षा की, उसका हिन्दी में दूसरा उदाहरण नहीं। 'देव और बिहारी' तुलनात्मक आलोचना का हिन्दी में अब भी सबसे अच्छा ग्रन्थ है। मतिराम से मिश्रजी को विशेष स्नेह है। आपके पाण्डित्य की मिश्री में कोई बाँस की फाँस नहीं।

इस प्राचीन परिपाटी के विरुद्ध हमारे कई आरोप हैं। अलंकार गिन-कर काव्य की श्रेष्ठता निर्धारित नहीं की जा सकती। कभी-कभी तो अलं-कार की अधिकता खटकती है। पद्माकर विशेष अपराधी हैं। बिहारी ने कहा ही है :

> **'भूषण भार सँभारिहैं, क्यों यह तन सुकुमार ?**
> **सीधे पाँव न धर परत, सोभा ही के भार ?'**

बिना व्यक्तिगत आक्षेपों के यह पण्डितगण कम बात कर सकते थे, जैसे 'मिश्रजी भंग की तरंग में रह गये' इत्यादि। किसने किससे भाव चुरा लिये, इस विषय से भी यह बड़े परेशान रहे। शेक्सपियर तो अपने नाटकों के सभी प्लॉटों के लिए दूसरों के ऋणी थे।

एक नई संस्कृति के संपर्क से हमारे देश के जीवन में नये प्राण आ गये। गहरी निद्रा से जागकर हमारे साहित्य ने आँखें खोलीं और एक नये ही जग में अपने को पाया। इस काल के आलोचक अतीत के गृह-द्वार पर खड़े भविष्य का अरुणोदय देख रहे हैं। प्राचीन साहित्य का पूरा ज्ञान इन साहित्यकारों को है, किंतु उनके पाण्डित्य में एक नवीन सजीवता और आकर्षण है।

हिंदी नव-साहित्य के इस उषःकाल में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी एक भारी शक्ति थे। कुछ इसी प्रकार का प्रभाव डा० जॉनसन ने अपने सम-कालीन साहित्य पर डाला था। 'सरस्वती' के संपादक की हैसियत से द्विवेदीजी ने दृढ़ हाथों से हिन्दी साहित्य का संचालन किया। सदा ही द्विवेदीजी के निर्णय ठीक रहे, यह तो नहीं कहा जा सकता; किंतु आपकी संरक्षकता में हिंदी खूब फली-फूली।

मिश्रबंधु, बा० श्यामसुन्दरदास और पं० रामचन्द्र शुक्ल इसी श्रेणी में हैं। मिश्र-बंधुओं ने हिंदी-साहित्य का इतिहास खोज और परिश्रम से लिखा, जिसने 'शिवसिंह सरोज' का स्थान लिया, हिन्दी कवियों का श्रेणी-विभाग किया और 'नवरत्न' लिखकर प्राचीन कविता को फिर से लोकप्रिय बनाया। मिश्र-बंधुओं में साहस और स्वतन्त्रता प्रचुर मात्रा में थे, यद्यपि अधिक गहराई तक वे न पहुँच पाये।

बा० श्यामसुन्दरदास ने हिन्दी साहित्य में बड़ी खोज की, और झगड़ों से बचकर वे चले। देव और बिहारी के झगड़े में हिन्दी के अनेक साहित्यिक खिंच आये और आपस में काफ़ी गाली-गलौज भी हुआ। फिर वर्षों बाद मौन तोड़कर बाबूजी ने देव की सराहना की। आपके जीवन के दो काम बहुत महत्त्व के हैं: नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना और शब्द-सागर। नागरी प्रचारिणी की तुलना रॉयल सोसाइटी से और शब्द-सागर की न्यू इँगलिश डिक्शनरी से हो सकती है। बा० श्यामसुन्दरदास ने अनेक ग्रन्थों की खोज और सम्पादन में सभा का हाथ बँटाया। नाट्य-शास्त्र से आपको विशेष दिलचस्पी थी। 'साहित्यालोचन' में आपने आलोचना-शास्त्र का नवीन पद्धति पर निरूपण किया।

पं० रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी आलोचना में विशेष स्थान है। आपके व्यक्तित्व की गम्भीरता से हृदय में सहज ही श्रद्धा हो आती है। इतनी गम्भीरता और गहराई तक हिन्दी का और कोई आलोचक नहीं पहुँचा। आपने हिन्दी साहित्य का काल-विभाग किया। तुलसी, जायसी और सूर की पाण्डित्यपूर्ण और अभूतपूर्व आलोचना की और काव्य के अन्तरतम तक पैठने का निरन्तर प्रयत्न किया। हिन्दी के नये कवि और लेखकों से आपको सहानुभूति कम थी, और कहीं-कहीं तो आपकी लेखनी में आवश्यकता से अधिक कड़वाहट आ जाती थी।

नवयुग और नए साहित्य के साथ-साथ नये पारखी भी पैदा हो रहे हैं। पुरानी काव्य-कसौटियों से नये साहित्य की ठीक परख नहीं हो सकती।

कहते हैं कि पुरानी शराब नई बोतलों में न भरनी चाहिए; बोतल टूट जाती है।

इस बार भी नेतृत्व 'सरस्वती' सम्पादक के हाथ रहा। पं० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की आँख 'विश्व साहित्य' की ओर लगी थी। आपका दृष्टिकोण व्यापक था और नये आलोचना-आदर्श आपके सामने थे। कहते हैं कि 'निराला' जी की कविताओं से बख्शीजी बड़े चकित हुए थे; किन्तु पन्त की कविताएँ भी तो धारावाहिक रूप से 'सरस्वती' के पहले पृष्ठ पर निकलती थीं। 'हिन्दी साहित्य-विमर्श' में बख्शीजी ने एक नये दृष्टिकोण से हिन्दी साहित्य का सिंहावलोकन किया और विश्व-साहित्य की तुला में हिन्दी को तोला।

हिन्दी के नये काव्य की अनुभूतिपूर्ण सूझ पं० हजारीप्रसाद द्विवेद-की है। प्रति वर्ष जो आप 'विशाल भारत' में नये काव्य-ग्रन्थों की आलोचना करते थे, उसमें आपके ही बताये तीन गुण—"कल्पना, चिन्तन, अनुभूति"—समान मात्रा में बराबर मिलते थे।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी गम्भीर अध्ययन, मनन और भावुकता से नये और पुराने साहित्य की आलोचना करते हैं। आपकी इस साधना का फल हिन्दी को आगे चलकर अवश्य मिलेगा। इसी दिशा में बा० गुलाब राय, नगेन्द्रजी और श्री सत्येन्द्र के प्रयास भी महत्त्वपूर्ण हैं।

'विश्व भारती' में 'हिन्दी कहानी-साहित्य' पर जो लेख श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने पढ़ा था, वह हिन्दी के लिए एक बिल्कुल नई चीज़ था। आदर्श आलोचक के अनेक गुण इस लेख में हमें मिले—साहस, सच्चाई और शैली का ओज। इस लेख में हिन्दी साहित्यकारों के छोटे-छोटे नख-चित्र हमें विशेष अच्छे लगे। प्रेमचन्दजी की बड़ी-बड़ी मूछें, स्वर ऊँचा करके हँसने की आदत और ग्रामीणों का-सा वेष; 'प्रसाद' के जीवन-रथ की परिधि, घर से दशाश्वमेध, दशाश्वमेध से घर—चल-चित्र की भाँति यह दृश्य आँखों के सामने घूम जाते हैं।

सत्साहित्य की सृष्टि में हिन्दी के पत्रकारों का हाथ बहुत-कुछ रहेगा। नये लेखकों को वही घटा-बढ़ा सकते हैं। किसी ज़माने में 'सरस्वती', 'माधुरी' और 'विशाल भारत' से हिन्दी को काफ़ी प्रेरणा मिली थी। 'हंस' ने अपने जीवन के आरम्भकाल से अब तक हिन्दी की काफ़ी सेवा की है। 'वीणा' और 'साहित्य सन्देश' ने भी अच्छा आलोचनात्मक काम किया है। जिस साहित्य के पोषक निष्पक्ष आलोचक और गुण-ग्राहक हैं, उस साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है। 'गुन न हिरानो गुनगाहक हिरानो है।'

२

एक दृष्टि से हम देखते हैं कि हिन्दी-साहित्य में आलोचना का काम पुराने ढर्रे पर चला आ रहा है; यानी बारीकियाँ ढूँढ़ना और बाल की खाल निकालना। साहित्य समाज का प्राण-स्वर है, यह मानकर चलनेवाली आलोचना हिन्दी में नहीं-सी है। जिस प्रकार रीतिकाल के कवि अलंकार-विवेचना करते थे, वही आज भी हमारे साहित्य-विद्यालयों में हो रहा है, मानो समाज और साहित्य में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए ही न हों। आज के अंग्रेजी-पढ़े, आलोचक अरस्तू और मैथ्यू ऑर्नल्ड की दुहाई देते हैं, किन्तु आलोचना लिखते समय भूल जाते हैं कि कला जीवन का चित्रण है। जिन आलोचकों ने पाश्चात्य-पद्धति को अपनाया, वे भी हमें साहित्य की बुनियादों तक न पहुँचा सके। उनका आलोचना-शास्त्र केवल सतह का परिवर्तन मात्र था।

आलोचक का काम गुण-दोष-विवेचन समझा जाता है। वह किसी कविता या कहानी की ख़ूबियाँ हमें समझा दे, बस उसका काम ख़त्म हो गया। वह साहित्य की अन्तरंग समीक्षा कर समाज के आधार-स्तम्भों तक नहीं पहुँच पाता। पहले सामन्ती युग में वह अलंकार गिनता था। आज पूँजीवादी युग में वह कल्पना की उड़ान पसन्द करता है।

यदि आलोचक साहित्य और कला की बुनियादों तक पहुँचकर उनकी विवेचना करता है, तो निश्चय ही वह उन्हें आगे बढ़ने में मदद दे सकता

है। साहित्य हवा में नहीं तैयार होता, समाज की वास्तविकता और उसकी संस्कृति का वह सच्चा नक्शा है। आज के संक्रान्ति-काल में वह कलाकार उच्च कोटि की रचना नहीं कर सकते, जो समाज की गढ़न से अनभिज्ञ हैं, या उसके प्रति उदासीन हैं। पारखी केवल गढ़न से ही .खुश नहीं हो जाता, वह सोने का गुण भी देखता है।

आज हिन्दी आलोचना में कुछ ग़लतफहमियाँ फैल रही हैं, जिनका स्पष्टीकरण ज़रूरी है। यह भ्रम अधिकतर ऑस्कर वाइल्ड के स्कूल की देन है और निर्जीव कला के जनक हैं। कुछ फ्रायड, आडलर आदि के विश्लेषण की समूल नक़ल का परिणाम हैं।

कहा जाता है कि कला युग और समाज के ऊपर कोई अद्भुत सृष्टि है जिसका मूल्य अमिट है। यह कला व्यक्ति-विशेष के मन की उपज समझी जाती है, जिसका भौतिक-परिस्थितियों से कोई सम्बन्ध नहीं। कहा जाता है कि कला के आधार जीवन के शाश्वत सत्य हैं, जो कि कभी बदलते नहीं। फ्रायड के फैलाये भ्रम अभी हिन्दी आलोचना में एक संकुचित परिधि में सीमित हैं।

यह भ्रम कम अध्ययन और मनन के फल हैं। कला की कसौटियाँ स्थिर करने के लिए समाज-विज्ञान का कुछ परिचय ज़रूरी है। तभी यह स्पष्ट होगा कि समाज के रूप के अनुसार ही कला का विकास हो सकता है। आज भी हम देख सकते हैं कि रूसी कला जीवन और आशा से ओत-प्रोत है, दूसरी ओर अंग्रेज़ी और फ्रेंच कलाकारों के प्राण छटपटा रहे हैं। फ़ासिस्त जर्मनी में कला का अन्त हो चुका था, और इन परिस्थितियों मे उच्च कोटि का कला-निर्माण असम्भव है।

सत्य, शिव और सुन्दर की आराधना को शाश्वत कहा जाता है, यानी जीवन में इनका रूप अपरिवर्तित है। हम जीवन को गतिशील और विकासमान समझते हैं, जड़, स्थावर नहीं। सत्य और सुन्दर के भी अधिकाधिक विकसित मान हमें समाज और कला में मिलते हैं। हबशी के लिए मोटे

होठ और चीनियों के लिए छोटे सूजे हुए पैर ही सुन्दरता की पराकाष्ठा थे। प्लेटो और अरस्तू के लिए दास-प्रथा ही शाश्वत सत्य थी, और उनकी समस्त समाज-योजनाओं का आधार। जो सत्य आज हमें शाश्वत दीखता है, कल मिथ्या हो जाता है, क्योंकि समाज के बदलते जीवन में हम सत्य का नया तथा विकसित रूप देखते हैं। सूर्योदय और गुलाब भी हमें सदा सुन्दर नहीं लगते। एक कवि ने लिखा है :

जब जेब में पैसा होता है, जब पेट में रोटी होती है।
तब ज़र्रा-ज़र्रा हीरा है, तब हर एक शबनम मोती है॥

फ्रॉयड ने मनुष्य के अन्तर्मन का जो विकृत नक्शा खींचा है, वह भी शाश्वत सत्य नहीं, वरन् क्षयग्रस्त विलासी समाज का नक़्शा है। फ्रॉयड के अनुसार अधिकतर कला Oedipus Complex की उपज है, यानी मा के प्रति पुत्र की वासना, जो बचपन से ही चली आती है। यह विचार स्वस्थ समाज पर लागू नहीं हो सकते, यह क्षय रोग के कीटाणु हैं।

हम कला को समाज की जीवन-शक्ति समझते हैं, समाज से अलग अन्तरिक्ष की रचना नहीं। जो कला ह्रासमूलक शक्तियों का शिकार बन जाती है, वह निर्जीव हो जाती है और सामाजिक प्रगति में सहायता नहीं कर पाती।

आलोचक का लक्ष्य केवल टेकनीक-विवेचना ही नहीं, उसे कला के अन्तस्तल तक पहुँचना चाहिए। इस प्रकार आलोचक केवल मध्यस्थ ही नहीं, वरन् समाज और संस्कृति के विकास का स्रष्टा भी बन सकता है। यदि आज हम हिन्दी के आलोचकों की ओर दृष्टि डालें, तो कितने इस गम्भीर उत्तरदायित्व की रक्षा कर रहे हैं?

स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्ल आधुनिक हिन्दी आलोचना के मुख्य स्तम्भ थे। उन्होंने प्राचीन आलोचना-शास्त्र और पाश्चात्य कसौटियों को साथ-साथ लेकर हिन्दी साहित्य की छानबीन की, और एक स्वतन्त्र आलोचना-शैली का निर्माण किया। शुक्लजी हिन्दी के गम्भीरतम आलोचक थे।

टेकनीक के गुण-दोष में उन्होंने सूक्ष्मदर्शिता दिखाई। सूर, तुलसी और जायसी के उत्कृष्ट अध्ययन उन्होंने हिन्दी साहित्य को दिये। शुक्लजी की दृष्टि अतीत की ओर थी। आधुनिक हिन्दी साहित्य के निर्माण में उन्होंने हमारा हाथ नहीं बँटाया, बल्कि विरोध ही किया। आज के साहित्य की ओर जब भी उन्होंने दृष्टि उठाई, वह उन्हें खोटा लगा। यह सच है कि इधर, जब कि आधुनिक साहित्य प्रसव-काल की पीड़ा से निकल चुका था, शुक्लजी की उससे कुछ सहानुभूति हो चली थी, किन्तु यह घटना घट जाने के बाद की बुद्धिमानी थी। शुक्लजी ने हिन्दी आलोचना को गम्भीर रूप दिया और पुराने ढंग की तू-तू मैं-मैं से बाहर निकाला, अतः हमें उनका आभार स्वीकार करना चाहिए। साथ ही उनकी दृष्टि की सीमाएँ भी समझना आवश्यक है।

श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी अपने कर्तव्य में सजग हैं और उनकी अनुभूति विस्तृत और व्यापक है। हज़ारीप्रसादजी ने अपने व्यक्तित्व को सर्वाङ्ग बनाने में कुछ उठा नहीं रक्खा है और अपनी ग्रहण करने की क्षमता के कारण आप लीक छोड़कर भी चल सकते हैं। आप कहते हैं—'कालिदास ने अयोध्या की दारुण दीनावस्था दिखाने के बहाने मानो गुप्त सम्राटों के पूर्ववर्त्ती काल के समृद्ध नागरिकों की जो दुर्दशा हुई थी उसी का अत्यन्त हृदय-विदारी चित्र खींचा है। शक्तिशाली राजा के अभाव में नगरियों की असंख्य अट्टालिकाएँ भग्न, जीर्ण और पतित हो चुकी थीं। उनके प्राचीर गिर चुके थे, दिनान्त-कालीन प्रचण्ड आँधी से छिन्न-भिन्न मेघ-पटल की भाँति वे श्रीहीन हो गये थे।' ('रघुवंश') द्विवेदीजी पाठक को उस समस्त संस्कृति का सामन्ती ढाँचा पहचानने में मदद नहीं देते। उसके प्रति आपको गहरी ममता है। हम द्विवेदीजी के कृतज्ञ हैं, कि प्राचीन चिन्ता से इतना घनिष्ठ संबन्ध होते हुए भी नवीन के प्रति आपमें उपेक्षा-भाव नहीं :

'नवीन चिन्ता जितनी भी कच्ची, जितनी भी अल्पवयस्क और जितनी

भी अस्थिर स्वभाववाली क्यों न हो उसमें नवीन प्राण हैं और प्राणवत्ता सबसे बड़ा गुण है।'

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने आधुनिक साहित्य पर खूब लिखा है। आपकी अनुभूति तरल है, किन्तु उसके पीछे कोई ठोस बौद्धिक तत्त्व नहीं। अपने जीवन में संघर्ष से विवश आप प्रगतिशील शक्तियों की ओर उन्मुख हुए हैं। टॉलस्टॉय और गांधी का प्रभाव आपके व्यक्तित्व पर इतना गहरा है कि आप जीवन के भौतिक आधार-तत्त्वों को मानने में असमर्थ हैं। इसका मतलब यह है कि मनुष्य समाज-निर्माण की भौतिकता से बचकर अध्यात्म की शरण ले, यद्यपि शांतिप्रियजी इतनी दूर नहीं जाते। आप समय के साथ पग मिलाकर चलने की पूरी चेष्टा कर रहे हैं और आज के साहित्य-निर्माण में आपने हाथ बटाया है।

कुछ आलोचक यह भी कहते हैं कि हिन्दी के कवि हीन-भावना (Inferiority Complex) के शिकार हैं। यदि इस बात में कुछ भी सच है तो हम इतना कहने से ही संतुष्ट नहीं हो सकते। हमें पता लगाना होगा कि किन सामाजिक परिस्थितियों में पड़कर हमारे कवि इस हीनता का अनुभव कर रहे हैं। हमें उन परिस्थितियों को बदलना होगा।

हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में आज भी कुछ ऐसी शक्तियाँ सतर्क और जागरूक हैं जिनके कारण हम हताश नहीं हो सकते। यह लेखक कला के सामाजिक ह्रास के कारण समझते हैं, और उन परिस्थितियों को बदलना चाहते हैं जिनके कारण स्वस्थ कला आज नहीं पनप पाती। भारतीय समाज और कला की प्रगतिशील शक्तियाँ संगठित हो रही हैं और बल पकड़ रही हैं। विदेशी पूँजीवाद से मोर्चा लेकर हमारी सामाजिक चेतना जाग उठी है और उसका प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ रहा है।

आलोचना में प्रगतिशील शक्तियों का नेतृत्व श्री शिवदानसिंह चौहान ने किया है। आप यू० पी० प्रगतिशील लेखक संघ के मन्त्री थे और समाज-विज्ञान का आपने गहरा अध्ययन किया है। आप साहित्य-विवेचना में

बुनियादी तत्त्वों तक आसानी से पहुँच जाते हैं। आप अनुभूति रखकर भी निर्मम बुद्धिवादी हैं। आपकी परख कठोर अग्नि के समान है जिसमें पड़कर धातु की असलियत का फ़ौरन पता लगता है। बीमारी और व्यक्तिगत उलझनों के कारण परिमाण में अभी चौहान ने अधिक नहीं लिखा, किन्तु जो कुछ भी लिखा है उसमें सचाई के साथ-साथ गहराई है। आपके अनेक निबन्ध 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता', 'छायावादी कविता में असंतोप-भावना', 'पन्त की वर्तमान कविता-धारा', 'भारत की जन-नाट्यशाला', 'हिन्दी का कथा-साहित्य' आदि हमारे आलोचना-साहित्य के दीप-स्तम्भ हैं। इन निवन्धों का संग्रह 'प्रगतिवाद' नाम से निकल गया है।

पंतजी भी 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में वर्ग-संस्कृति के आलोचक के रूप में प्रकट हुए हैं। पंतजी का अध्ययन गहरा और सुलझा हुआ है। उनका बुद्धिवादी दृष्टिकोण उन्हें वर्ग-संस्कृति के तत्त्वों तक पहुँचा देता है। पन्तजी लिखते हैं:—

'आज सत्य, शिव, सुन्दर करता, नहीं हृदय आकर्षित,
सभ्य, शिष्ट और संस्कृत लगते, मन को केवल कुत्सित
संस्कृति कला सदाचारों से, भव-मानवता पीड़ित
स्वर्ण-पींजड़े में है बन्दी, मानव-आत्मा निश्चित।'

पन्तजी का प्रगतिशील शक्तियों के साथ आना एक स्मरणीय घटना थी। इसका हिन्दी साहित्य के निर्माण पर गहरा असर पड़ा था।

नरेन्द्र शर्मा ने आधुनिक हिन्दी कविता का विस्तृत अध्ययन किया। आपके विचारों की रूपरेखा आपके निबन्ध 'हिन्दी कविता के बीस वर्ष' से स्पष्ट हो चुकी है। 'प्रवासी के गीत' की भूमिका आज के साहित्य की मार्क्सवादी दृष्टिकोण से आलोचना है। 'कला चिरजीवी' में पुरानी संस्कृति के संकुचित प्रसार पर आपने प्रकाश डाला है।

आज के कवि का जीवन असफलताओं से घिरा है। पग-पग पर वह

ठोकर खाता है। उसका गीत उसके कण्ठ में घुटकर विषैला पड़ने लगता है, उसका कातर नाद फैलकर खण्डहरों में गूँज उठता है :

'क्या कंकड़ पत्थर चुन लाऊँ ?'

नरेन्द्र ने कवि-जीवन के अरमानों और उसकी निराशाओं का तत्त्व समझ लिया है। इसीलिए वह यह कभी न लिखेंगे :

'जग बदलेगा किन्तु न जीवन'

आज जीवन को बदलने के लिए जग-को बदलना आवश्यक हो गया है।

डा० रामविलास शर्मा हिन्दी के प्रतिभासम्पन्न और तेजस्वी आलोचक हैं। आपकी लेखनी में निर्भीकता, स्वाधीनता और बल है। आपका अध्ययन गहरा है। प्रेमचन्द और भारतेन्दु युग पर विस्तृत आलोचना लिखी है। इसके अतिरिक्त आपके साहित्य पर बैसवाड़े के किसान की जागरूकता और तत्परता की छाप भी है।

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने हाल में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है। पूना साहित्य परिषद् में सभापति के पद से दिये अपने भाषण में आपने प्रगति का पक्ष ग्रहण किया है। साहित्य और समाज में गति और परिवर्तन आप स्वाभाविक मानते हैं। आप यह भी मानते हैं कि आज की परिस्थितियों में समाजवाद ही प्रगतिशील शक्ति है, किन्तु आप फिर भी पूछते हैं कि प्रगति का पथ समाजवाद का पथ ही क्यों हो? इसका उत्तर तो आप स्वयं ही दे चुके हैं। आज की शक्तियों में समाजवाद की शक्ति ही प्रगतिशील है, अतएव प्रगतिशील कलाकार अथवा आलोचक आगे चलकर उस पथ का अनुसरण करेगा। आगे चलकर वाजपेयीजी पूछते हैं कि कुछ दिन बाद समाज का रूप बदलेगा, नये प्रश्न हमारे सामने उठेंगे, तब क्या होगा? उत्तर स्पष्ट है। नई समस्याओं का सुझाव नई संस्कृति को देना होगा। किन्तु यह समस्याएँ भौतिक नहीं, मनोवैज्ञानिक होंगी। अब तक समाज दो वर्गों में विभाजित रहा है : शोषक और शोषित।

समाजवाद इस वर्ग-भेद को दूर कर एक वर्गहीन समाज की स्थापना करेगा। इस समाज में मनुष्य का शोषण न होगा और इस प्रकार आदिम युग का अन्त और इतिहास का आरम्भ होगा। नवीन संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्य की आर्थिक समस्याएँ सदा के लिए हल हो चुकेंगी।

प्रगतिवाद का स्वर हिन्दी-साहित्य में बल पकड़ रहा है। अनेक तरुण साहित्यकार इसके प्रभाव में आ रहे हैं। हमें सन्तोष है कि पुराने महारथियों का ध्यान भी इधर आकर्षित हो रहा है। हिन्दी आलोचना को आज छोटी-मोटी खूबियाँ छोड़कर साहित्य के तल तक पैठना होगा, उसके आधारतत्त्वों तक पहुँचना होगा, आगे का रास्ता सुझाना होगा और भविष्य के निर्माण में मदद करनी होगी। जो आलोचक आज भी बाल की खाल निकालने में ही लगे हैं, समय उनका मुँह न देखेगा और अपनी गति से चलता ही जायगा।

रंग-मंच

हिन्दी की अभी तक कोई स्वतन्त्र रंग-मंच-परिपाटी नहीं बनी, जिसके अनुरूप हमारे नाटकों की रचना हो। हमारे साहित्यिक नाटक वाचनालय की शान्ति में ही रुचते हैं। नाटक के नाम से जो रचनाएँ रंच-मंच पर खेली जाती हैं, वे साहित्यिक नहीं होतीं। वे पारसी रंग-मंच की प्रणाली का अनुकरण करती हैं। हिन्दी की साहित्यिक जनता दिन-प्रति-दिन बढ़ रही है और सफल साहित्यिक नाटकों का अभिनय देखने को उत्सुक है। ऐसी दशा में हमारे साहित्यकारों का यह कर्तव्य हो जाता है कि रंग-मंच की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए वे नाटक लिखें। हमें हर्ष है कि हमारे तरुण नाटककार इधर ध्यान दे रहे हैं।

भारतीय नाटक की प्राचीन परम्परा लुप्तप्राय है। संस्कृत के सुन्दर,

सुगठित नाटक तो हमें अब भी पढ़ने को मिलते हैं, किन्तु पुराने नाट्यगृहों की परम्परा सर्वथा खो चुकी है। संस्कृत के अधिकतर नाटक राजसभाओं में अभिनय की वस्तु थे। शाकुन्तल, मालती माधव, मुद्राराक्षस, मृच्छकटिक आदि राज-सभाओं के नाटक थे। शायद क्षुद्रक, मालव, लिच्छवि, शाक्य आदि गण राज्यों में जनसाधारण के रंग-मंच की परम्परा रही हो, जिसका अब कोई चिह्न अवशिष्ट नहीं।

ग्रीस के नाट्य-गृहों में हजारों दर्शक बैठ सकते थे। वहाँ नाटक देखना धर्म-कार्य समझा जाता था, क्योंकि नाटक द्वारा वे देवता की अर्चना करते थे। इसी प्रकार शेक्सपियर के समकालीन नाट्य-गृहों में जनता अबाध वेग से उमड़ती थी। भारतीय चित्रकला में हमें यह भावना मिलती है। कहते हैं कि अजन्ता की दीवारों के चित्र बौद्ध भिक्षुओं ने बनाये थे। हमारे नाट्य-गृहों में जो जनता उमड़ती है; वह साहित्यिक नाटक से अभी कितनी दूर है?

भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी रंग-मंच के जनक थे। आपने अनेक नाटक लिखे और भारतेन्दु-नाटक-मंडली ने उनका सफल अभिनय भी किया। इस रंग-मंच ने संस्कृत की परिपाटी को फिर से जीवित किया। 'सत्य हरिश्चन्द्र' हमें संस्कृत के नाटकों का स्मरण दिलाता है। इसकी दृष्टि बीते हुए युग की ओर है। 'भारत-दुर्दशा' और 'प्रेमयोगिनी' आदि में आधुनिक समाज का प्रतिबिम्ब है। 'चन्द्रावली' वास्तव में काव्य है, जिसका कलेवर मात्र नाटक का रूप लिये है। भारतेन्दु की साधना ने हिन्दी रंग-मंच को जीवन-शक्ति दी, किन्तु फिर भी वह पनप न सका। साहित्य का रंग-मंच से यह मिलन क्षणिक ही रहा।

हिन्दी रंग-मंच को जीवित करने का दूसरा प्रयास व्याकुल भारत-नाटक-मंडली ने किया। व्यवसायी मंडलियों में उर्दू का ही बोलबाला था। उनके अभिनेता कभी हिन्दी का व्यवहार भी करते थे, तो विकृत रूप में; देश की प्राचीन संस्कृति से इनका कोई सम्पर्क न था। 'व्याकुल' का नाटक

'बुद्धदेव' बहुत लोकप्रिय हुआ। इस नाटक में हिन्दी का व्यवहार हुआ था और इस पर भारतीय संस्कृति की छाप थी। व्याकुल-मंडली के अभिनेता हिन्दी शब्दों का उच्चारण भी शुद्ध करते थे।

इसी समय स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और कॉलेज, यूनिवर्सिटी के छात्रों में इनका खूब प्रचार हुआ। अव्यवसायी मंडलियों ने स्व० राय महोदय के 'शाहजहाँ', 'मेवाड़ पतन' आदि नाटकों का वर्षों अभिनय किया। इस प्रकार हमारे बीच अभिनय की एक क्षीण परिपाटी जीवित बनी रही।

पारसी नाटक-मंडलियों का ध्यान भी हिन्दी की ओर गया। 'न्यू एलफ्रेड' नाटक-मण्डली के लिए बरेली के पं० राधेश्याम कविरत्न ने 'वीर अभिमन्यु', 'भक्त प्रहलाद' आदि नाटकों की रचना की। इनकी भाषा हिन्दी अवश्य थी, किन्तु इन नाटकों में साहित्यिकता का अधिक अंश न था। ये पारसी नाट्य-प्रथा के केवल हिन्दी रूप थे। इन मण्डलियों का अभिनय जीवन-हीन, विकृत, रूढ़ि-ग्रस्त था। पारसी रंग-मंच हमें जीवन से दूर किसी मिथ्या-जग में पहुचाता था। वास्तविकता से यह अभिनय कोसों दूर था।

पं० माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन-युद्ध' हिन्दी रंग-मंच के इतिहास में एक स्मरणीय घटना थी। इस नाटक के अनेक सफल अभिनय साहित्य समितियाँ ने किये। 'कृष्णार्जुन-युद्ध' में साहित्यिकता के साथ-साथ नाट्य-गुण विशेष मात्रा में मौजूद था। पं० बदरीनाथ भट्ट अधिकतर प्रहसन लिखते थे। आपकी नाटिका 'चुङ्गी की उम्मेदवारी' हास्य में ओत-प्रोत है। हास्यात्मक नाटक का वह प्रखर, निर्मल स्वरूप अभी हिन्दी में नहीं आया, जिसके अभ्यस्त हम शॉ आदि की नाट्यकला से हो गये हैं।

'प्रसाद' के साथ हम हिन्दी नाटक के इतिहास का नया पृष्ठ पलटते हैं। 'प्रसाद' गम्भीर, सुसंस्कृत और चिन्तनशील व्यक्ति थे। आपने गम्भीर, साहित्यिक नाटकों की तन्मयता से रचना की। आपकी ऐतिहासिक खोज

सराहनीय थी। किंवदन्तियों पर आप कभी निर्भर न रहते थे। अतः 'नाग-यज्ञ', 'अजातशत्रु', 'चंद्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुव स्वामिनी' आदि आपके नाटक हमारे प्राचीन इतिहास को बड़ी देन हैं। इन नाटकों का अच्छा अभिनय भी हो सकता है, किंतु इनकी क्लिष्ट भाषा से अभिनेता कुछ भय खाते हैं। एक अनुशासित साहित्यिक जनता ही इन नाटकों के अभिनय में योग दे सकती है। 'प्रसाद' की कृपा से हमारे भंडार में उच्च-कोटि के साहित्यिक नाटक हैं। किंतु कोई विशिष्ट रंग-मंच उनके अनुरूप हमारे पास नहीं। 'कामना', 'एक घूँट' आदि का अभिनय हम अब भी कर सकते हैं, किंतु अभी तक इनका जीवन वाचनालय और क्लास-रूम तक ही सीमित है।

इस कोटि में कवि श्री पंत का नाटक 'ज्योत्स्ना' भी आता है। उच्च कोटि की पाठ्य-सामग्री तो यह रहा है, किंतु इसके अभिनय का कहीं सफल प्रयास हुआ हो, यह हमें ज्ञात नहीं। इस कार्य को हिन्दी साहित्य-सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पादित कर सकता है। किसी वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर कवि की देख-रेख में इस नाटक का अभिनय हो, तो हिंदी रंग-मंच के विकास में हमें अनन्य सहायता मिले। पंतजी ने इधर अनेक नाटक लिखे हैं। इन पर उदयशंकर के संस्कृति केन्द्र का अवश्य ही शुभ प्रभाव होगा।

हिन्दी में पिछले वर्षों में नाटक तो खूब लिखे गये हैं, किन्तु उनके अभिनय कम हुए हैं। स्वर्गीय प्रेमचन्द, श्री सुदर्शन, पं० गोविन्दवल्लभ पन्त आदि नाटककारों के रूप में हमारे सामने आ चुके हैं। नए लेखकों में 'उग्र', 'अश्क', पं० उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'उग्र' का नाटक 'महात्मा ईसा' उनकी गम्भीरतम कृति है और विषय के अनुरूप ही उसकी महत्ता भी है। 'ईसा' का हास्य बहुत निर्मल और मनोरम है।

नवयुग के नाटककारों के लिए हम यह तो अवश्य ही कह सकते हैं

कि उनके नाटक अभिनय के लिए लिखे गये हैं, किन्तु हिन्दी का कोई स्वतन्त्र रंग-मंच नहीं, इस कारण अभी तक वे सजीव नहीं हुए। भारत के उन्नतिशील चित्रपट का प्रभाव रंग-मंच पर भी पड़ेगा। विशेषतः 'न्यू थियेटर्स' आदि के यथार्थवादी अभिनय का प्रभाव अवश्य हिंदी के अभिनेताओं पर पड़ेगा। पृथ्वीराज कपूर के अभिनय में हम प्रौढ़ता और यथार्थवादिता बड़ी मात्रा में पाते हैं। इस प्रकार हिन्दी-नाटक क्रमशः जीवन के निकट आ रहा है। हम इब्सन, शॉ, गॉल्ज़वर्दी के नाटक पढ़ते हैं। पाश्चात्य चित्रपट की प्रगति देखते हैं। नये आदर्श हमारे सामने हैं। कब तक हम पारसी रंग-मंच-प्रणाली के दास बने रह सकते हैं? एक उन्नति का मार्ग रेडियो ने हमारे बीच खोल दिया है। हमें हर्ष है कि कुछ साहित्यिकों के नाटक रेडियो पर अभिनीत हुए हैं।

रंग-मंच का विकास व्यवसायी दल नहीं करेंगे। उसका नेतृत्व साहित्यिक ही कर सकते हैं। छात्र-मंडलियाँ और अन्य व्यवसायी-दल संक्षिप्त नाटक सफलता-पूर्वक खेल सकते हैं। हमें हर्ष है कि हिन्दी-संसार का ध्यान एकांकी नाटकों की ओर गया है। श्री भुवनेश्वर वर्मा का 'कारवाँ' और डा० रामकुमार वर्मा के संग्रह 'पृथ्वीराज की आँखें' आदि हमारे सामने हैं।

कुछ वर्ष पहले श्री जगदीशचन्द्र माथुर के दो अति सुन्दर नाटक 'रूपाभ' में निकले थे; 'भोर का तारा' तथा 'जय और पराजय।' इन नाटकों का प्रयाग और आगरा में बहुत सफल अभिनय हुआ। इस श्रेणी के नाटकों की हिन्दी रंग-मंच के लिए बड़ी आवश्यकता है।

हिन्दी रंग-मंच के भविष्य की कुछ हम कल्पना कर सकते हैं। भारतीय जनता की अनुभूतियाँ और आशाएँ इस सजीव रंग-मंच में केन्द्रित होंगी—भारतीय जीवन के वह निकट होगा। उसकी भाषा देश के प्रगतिशील जन-समाज को सहज बोधगम्य होगी। उसकी वाणी में जीवन के प्रति आलोचना-भाव होगा। केवल पुराने बेलबूटों की रंग-मंच नकल न

करेगा। प्राणभार से आकुल इस रंग-मंच की लोकप्रियता का अनुमान हम कठिनता से कर सकते हैं। यही रंग-मंच पेरीक्लीज़ के ग्रीस और शेक्स-पियर के इंगलैण्ड में रचित नाट्य-साहित्य की समता कर सकेगा और कालिदास की मर्यादा का उत्तराधिकारी बनेगा।

किस प्रकार हम उस रंग-मंच की सृष्टि में मदद कर सकते हैं? साहित्यिकों की परिषद् इधर ध्यान दे सकती है। हम एक नाट्य-समिति का सूत्रपात करें जिसमें उदयशंकर, पन्तजी आदि का योग माँगा जाय; धन एकत्र कर एक अभिनय-भवन निर्माण किया जाय और समय-समय पर अभिनय योग्य नाटक आमन्त्रित किये जायँ। क्या यह बात कल्पनातीत है? हमें ऐसे रंग-मंच की ज़रूरत है जो हमारे जन-समाज का प्रतिनिधि बन सके, जिसमें हमारी आशा-अभिलाषाएँ प्रतिबिम्बित हों।

भारतीय जन नाट्य-संघ ने इस प्रयास को सफलतापूर्वक उठाया है। हिन्दी प्रदेश में उसकी सजीव शाखाएँ बनाने की बड़ी आवश्यकता है।

प्रेमचन्द की उपन्यास-कला

(१)

स्व० प्रेमचन्द ने जब हिन्दी-साहित्य में पैर रक्खा, वह उसके जाग्रति का युग था। भारतेन्दु ने जब लिखना शुरू किया था, उस समय साहित्य और कला का पारखी केवल जराजीर्ण सामन्ती समाज था; मध्य वर्ग का जन्म ही हो रहा था। प्रेमचन्द को समझनेवाली मध्यवर्ग की जनता काफ़ी तादाद में तैयार हो चुकी थी। इसका कारण भारत में पूँजीवाद का आगमन था। इस जागृति के युग में हमारा कथा-साहित्य क़िस्सा तोता मैना और बैताल पचीसी, चन्द्रकान्ता, भूतनाथ और मि० ब्लैक के जासूसी कर्तब छोड़ 'सेवा-सदन' और 'प्रेमाश्रम' की ओर मुड़ा।

भारत की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था संक्रान्तिकाल में है, किन्तु एक नई शक्ति भी हमारे बीच उठ रही है जो समाज का कायाकल्प करके हमें फिर उन्नति के पथ पर अग्रसर करेगी। इस उन्नति के पथ में अनेक शक्तियाँ बाधा डाल रही हैं, किन्तु उनकी पराजय निश्चित है।

हमारे इतिहास के इस लम्बे युग का पूरा विवरण प्रेमचन्द के साहित्य में मिलेगा। साम्राज्यशाही के कारण भारतीय पूँजीवाद के विकास में बाधा पड़ती रही, किन्तु गाँव में जर्जर सामन्तशाही को पूरी सहायता मिली। नगर में उन्नत मध्यमवर्ग और श्रमजीवियों ने और गाँव में निम्न श्रेणियों ने स्वाधीनता का झण्डा ऊँचा किया, किन्तु अभी उस महायज्ञ में पूर्णाहुति नहीं पड़ी है।

प्रेमचन्द का साहित्य असल में भारतीय गाँव का आधुनिक इतिहास है। नगर से उन्हें कभी वास्तविक सहानुभूति नहीं हुई। गान्धीवाद के प्रभाव में वह गाँव का सरल, निर्मल जीवन अपना ध्येय मानते रहे। उनकी आशाएँ पाँडेपुर पर केन्द्रित थीं, बनारस पर नहीं। भविष्य तो नगर के साथ है, किन्तु भविष्य का नगर 'लाभ' के बल पर अवलम्बित न होगा।

प्रेमचन्द की साहित्यिक दुनिया इसी विशाल भारतीय जनसमाज का प्रतिबिम्ब है। इस साहित्य में हमें उसका विस्तृत वर्णन मिले। उसके संघर्ष, विजय, पराभव का विशद चित्रण।

प्रेमचन्द की दुनिया एक खँडहर-मात्र है। चतुर्दिक् यहाँ दैन्य, निराशा, दारिद्रय का चित्र है, किन्तु नव-जीवन का सन्देश भी इस समाज की रग-रग और कपोलों में पहुँच चुका है। प्रकृति का यहाँ अद्भुत साज-शृंगार है; फाग, डफ, अबीर—और आम और महुए के पेड़ों पर कोयल की तान।

यह दुनिया अनेक खिलाड़ियों की रंगभूमि है। पल भर अपना करतब दिखाकर वे यहाँ से चले जाते हैं। एक मेले की पूरी भीड़ यहाँ मिलेगी, धक्का-मुक्की और तिल रखने को न ठौर। किसान, अहीर, पासी, अन्धे

भिखारी, लोभी वणिक; व्यवसायी, पूँजीपति, ज़मींदार, रईस, ओहदेदार, पण्डे, मुल्ला, वृद्ध, आबाल, बनिता सभी इस भीड़ में मौजूद हैं। यह विश्वामित्र की सृष्टि से अधिक सफल मानव की सृष्टि है, और इसमें न्याय, विवेक, त्याग और आदर्श के हाथ अन्तिम विजय निश्चित है।

(२)

प्रेमचन्द का साहित्य परिमाण में काफ़ी है। सेवा-सदन, प्रेमाश्रम, वरदान, रंगभूमि, काया-कल्प, प्रतिज्ञा, निर्मला, कर्मभूमि, ग़बन, गोदान, इसके अतिरिक्त दो नाटक और अनेक कहानियाँ। इस साहित्य में दिव्य चक्षुओं से देखा हुआ जीवन का एक बृहत् टुकड़ा मिलेगा, अनेक आकर्षक व्यक्ति, साथ ही कहानी का आनन्द और जीवन का तथ्य।

'सेवा-सदन' में मध्य-वर्ग के पतन का एक चित्र है, जिसे आगे भी बार-बार प्रेमचन्द ने दुहराया है। आमदनी कम, ख़र्च अधिक, ऊपर सफ़ेदपोशी का ढोंग। यह विडम्बना एक व्यक्ति अथवा परिवार की नहीं, पूरे समाज की है। कम वेतनभोगी स्कूल मास्टर का संकुचित जीवन, विलास की लालसा, समाज की दुर्व्यवस्था, पतिता स्त्रियों का पथ—यह वीभत्स चित्र कलाकार ने खींचा। यह उसकी पहली उड़ान थी, किन्तु पहली बार ही व्योम-विहारिणी बनी। मध्यवर्ग और नगर-जीवन की असफलताओं का इतना विस्तृत विवरण प्रेमचन्द ने फिर नहीं किया। फिर वह गाँव की ओर झुक गये। यौवन में दाल की मंडी का चक्कर लगाकर उनकी कल्पना ने 'सेवा-सदन' और 'प्रेमाश्रम' की शरण ली।

'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द गाँव की ओर मुड़े। यह जर्जर सामंतशाही का पहला विस्तृत चित्र उन्होंने खींचा। ज़मींदारी प्रथा का विषाक्त वातावरण, कुलीनता की लाज, स्वार्थपरता, त्याग, किसान-समाज की दीनता, अक्षमता, किन्तु बढ़ती संगठित शक्ति। 'गोदान' में उन्होंने इस चित्र को दोहराया, बड़े रस और अलंकार-परिपूर्ण भाषा और भावुकता से। किन्तु इस बार ज़मींदार के हृदय-परिवर्त्तन की आशा प्रेमचन्द छोड़ चुके थे।

'रंगभूमि' भारतीय समाज का एक व्यापक विशाल चित्र है। रंगभूमि रईसों और पंडों का प्रिय काशीधाम और पास का गाँव पाँडेपुर है। यह गाँव स्व० प्रेमचन्दजी का गाँव है और सूरदास का मॉडल यहाँ उन्हें एक अंधा भिखारी मिला था। इस कथा के विशाल चित्रपट पर कलाकार ने अपनी तूलिका से सभी तबक़ों का चित्रण किया; हिंदू रईस, ईसाई वणिक, मुसलमान, कुलीन, गिरती दशा में अंग्रेज़ अफ़सर, अहलकार, स्वयंसेवक, राजघराने, रियासतों की दलित प्रजा, रूढ़ि का जकड़ा ग्रामीण समाज, और कथा का सरताज अंधा फ़क़ीर सूरदास। घूम-फिरकर कथा पाँडेपुर में ही केन्द्रित होती है। कारण है सिगरेट की फ़ैक्टरी जिसके खुलने से गाँव में अनेक पातक फैलते हैं, अत्याचार होते हैं और अंत में जाग्रति होती है।

'कायाकल्प' में प्रेमचन्द परलोकवाद की ओर झुके। यह प्रवृत्ति उनके साहित्य में सदा रही है। उनकी कहानी 'मूँठ' इसका एक उदाहरण है। पार्थिव जग में जो हम चर्म-चक्षुओं से देखते हैं, उसके पार कुछ है—यह धारणा बढ़कर 'कायाकल्प' में कथा-वस्तु का रूप विकृत करती है। इस कारण 'कायाकल्प' केवल सामाजिक कथा नहीं रही। वह व्यक्ति के जन्म-जन्मान्तर, योगाभ्यास, कायाकल्प आदि पचड़ों में पड़ कुछ राइडर हैगर्ड (Rider Haggard) के 'शी' (She) का आकार-प्रकार ले बैठी है। साथ-ही-साथ उसमें पुराने कुलीनों के प्रति बड़ा मधुर व्यंग्य भी है—मुंशी वज्रधर के चित्रण में।

'कर्मभूमि' एक सार्वजनिक आंदोलन का अध्ययन है। किस प्रकार जनता का बल चींटी के आकार से क्रमशः हाथी बन जाता है इसका वर्णन इस कथा में है।

'निर्मला' वृद्ध-विवाह का चित्र है। एक पूरा परिवार इसके कारण बिगड़ जाता है। यहाँ विमाता का एक कुशल मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी है।

'ग़बन' हिन्दू गृह कलह, हिन्दू नारी की आभूषण-लालसा और निम्न-मध्यवर्ग की विडम्बना और पतन का शक्तिशाली चित्र है। 'ग़बन' हिन्दू